जी भी अनेक ऋषि मुनियों के संग उपस्थित थे। इसी यज्ञके पश्चात् एक विराट् सभा में महाभारत की कथा श्रीवेदव्यास जी के परम शिष्य महर्षि वैशम्पायनजी ने सर्व प्रथम राजा जन्मेजय को सुनाई थी।

महाराजा "ययाति" भरतवंशी राजाओं के आदि पुरुष थे, जिनके पुत्र 'पुरु' हुए। इसी विख्यात् वंश में महाप्रतापी राजा भरत का जन्म हुआ, तभी से यह देश भरतखंड के नाम से विख्यात् हुआ। दूसरे पुत्र "यदु" थे, उनके वंश में यदुवंशी अनेक राजा हुए, उसीकुल में भगवान् श्रीकृष्ण ने जन्म लिया

पुरुवंश में आगे चलकर 'कुरु' का जन्म हुआ और उसी कुरु-कुल में कौरव हुए। द्वापर के अन्त में इसी कुरु-कुल में महाप्रतापी राजा 'शान्तनु' का जन्म हुआ।

भीष्म जी का जन्म और उनकी भीषण प्रतिज्ञा

महाराज शान्तनु एक समय शिकार खेलने गये तो गंगा तट पर उन्होंने मोहिनी रूप धारिणी 'श्रीगंगा' को देखा और उस पर मोहित हो गये। ऐसी अवस्था में श्रीगंगा भी महा-प्रतापी शान्तनु को देखकर मोहित हुई। परन्तु जब शान्तनु ने विवाह की इच्छा प्रकट की तो वह उनकी पत्नी इस शर्तपर बनी कि शान्तनु उनके किसी भी कार्य में हस्तक्षेप न करें, अर्थात् श्रीगंगा की जो इच्छा हो करे, महाराज शान्तनु उन्हें कुछ न कह सकें और यदि वे किसी काम में हस्तक्षेप करेंगे तो श्री गंगा उन्हें त्याग कर चली जायगी।

श्री गंगा के गर्भ से एक एक करके आठ बालक जन्मे, परन्तु वह प्रत्येक बालक को जन्म लेते ही गंगा में बहा देती थीं। सात पुत्र तो गंगा ने जल में बहा दिये। महाराज शांतनु भी इस दुःखको अन्दर ही अन्दर पीते रहे क्योंकि वे उसके किसी भी कार्य में हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। जब गंगा आठवें पुत्र को लेकर बहाने चली तो शांतनु सहन न कर सके और उसके पीछे २ गंगातट पर पहुंचे और उन्होंने उस बालक को जीवित रखने के लिये गंगा से कहा। पति की आज्ञा का पालन करने के विचार से गंगा ने उस पुत्र को जीवित रहने देने की बात मान ली, परन्तु उन्होंने उसके कार्यमें हस्तक्षेप किया इस कारण गंगाने कहा—नाथ! इस पुत्रको आपकी आज्ञानुसार जीवित रक्खूंगी वरन् इसका पालन-पोषण करके आपके अर्पण करूंगी। आपने मेरे कार्यमें हस्तक्षेप किया है इस कारण अब मैं आपके पास न रहूंगी" यह कहती हुई गंगा तो पुत्र सहित अन्तर्ध्यान हो गई और शांतनु देखते ही रह गये। उन्हें गंगा के त्यागे जाने का बड़ा ही दुःख हुआ और वे वहां से लौट गये।

बहुत दिन के बाद शांतनु जब एक दिन फिर गंगा तटपर गये तो उन्होंने एक ऐसा युवक देखा—"जो अपने धनुषसे बाणों की वर्षा कर रहा था जिसके प्रभाव से गंगा का जल तक सूख गया" यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही क्रोध भी हुआ कि "पवित्र गंगा पर शस्त्र-प्रहार क्यों हो रहा है? उन्होंने उस युवक के सन्मुख होकर शास्त्र प्रहार करने से रोका

और उससे परिचय प्राप्त करना चाहा। मायाके फेर में पड़ा हुआ वह युवक अपना परिचय न दे सका, इसी समय गंगाने उपस्थित होकर अपने उसी आठवें पुत्रका परिचय देते हुए महाराज शांतनु से कहा—महाराज ! यह वही आपका आठवां बालक है जिसको आपने जीवित रखने की आज्ञा की थी। अब यह बालक आपके अर्पण है। मैंने इसी अवस्था में आपके पुत्रको सर्वगुण सम्पन्न कर दिया है। अब इसे प्रसन्नता पूर्वक संग ले जाइये। यह आपके कुल को प्रकाशित करेगा और आप सभी दुःख भूल जायेंगे।" यह कहकर गंगा ने पुत्र 'देवव्रत' को भी बहुत कुछ उपदेश दिया। देवव्रत पिता का परिचय पाकर उनके चरणोंमें गिरा, महाराज शांतनु ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और गंगा को भी राजधानी में चलने के लिये बहुत कुछ कहा, परंतु श्रीगंगा ने यह दम्पति समागम जिस कारण किया था और उनसे प्रतिज्ञा कराई थी, सारा भेद बताकर उन्हें शांत किया और स्वयं अन्तर्ध्यान होगई। महाराज शांतनु इस प्रतापी पुत्रको लेकर प्रसन्न होते हुए अपनी राजधानी में गये। यही देवव्रत युवराज बनाया गया।

पतितोद्धारिणी श्रीगंगा और महाप्रतापी महाराज शांतनु के पुत्र, फिर वे तेजस्वी क्यों न हों ? उनमें सर्व गुणोंका समावेश होना तो स्वाभाविक ही है। युवराज देवव्रतने शस्त्र विद्या भगवान् परशुराम से प्राप्त की थी, अतः इसी अवस्था में उनके सन्मुख खड़े होकर वीरता दिखाने वाला कोई भी दिखाई नह देता था। यह देखकर शांतनु परम सुखी होकर समय व्यतीत करने लगे।

एक समय शान्तनु शिकार खेल कर लौट रहे थे तो गंगा तटपर उन्हें बड़ी ही सुगन्धि आई। वे इस सुगन्धि का कारण जानने केलिये वहीं रुक गये और उन्होंने अपने मंत्री को संग लेकर उधर ही पैर बढ़ाया जिधर से सुगन्ध आ रही थी। गंगा तटपर कुछ धींवर जाति की स्त्रियों के संग खड़ी हुई एक महा-सुन्दरी युवती को शांतनु ने देखा। यह सुगंधि भी उसी के शरीर से आ रही थी, अतः वे उससे उसका परिचय पूछने लगे। वह युवती धींवर (मल्लाह) की पालित पुत्री थी। धींवरों ने जलमें विचरण करने वाली एक मछली को पकड़ा था जो वास्तव में स्वर्ग की भ्रष्ट अप्सरा "आद्रिका" थी और वह उस समय गर्भवती थी। जब इसका पेट चीरा गया तो एक बालक और बालिका दोनों को देखकर धींवर बड़े ही विस्मित हुए। अन्त में यही बालक अपने पिता राजा उपरिचर के द्वारा परि-पालित हुआ, जो इतिहास में राजा मत्स्य के नाम से प्रसिद्ध है। बालिका का पालन एक धींवर ने किया। यही वह धींवर कन्या थी जो "मत्स्यगंधा" के नामसे प्रसिद्ध थी और पीछे इस का नाम "सत्यवती" पड़ा।

इसी सत्यवती के गर्भसे महर्षि वेदव्यासजी का जन्म हुआ था। बड़े होने पर वेदव्यासजी माता की आज्ञा पाकर तप करने चले गये और ऐसा घोर तप किया कि भगवान विष्णु के चौबीसों अवतारों में स्थानापन्न हुए।

राजा शांतनु मत्स्यगंधा के रूप-लावण्य पर मोहित हो गये थे, अतः परिचय प्राप्त होने पर वे उसके धर्म पिता धींवर के पास

गये और उन्होंने उससे विवाह करने की इच्छा प्रगट की। धींवर शांतनुका यह प्रस्ताव सुनकर अति आनंदित हुआ, उसने कहा—राजन्! मत्स्यगंधा के लिये आपसे बढ़कर वर मिलना कठिन ही है, अतः यह प्रसन्नता से आपकी पत्नी हो सकती है, यदि आप इसके गर्भसे उत्पन्न पुत्रको अपना उत्तराधिकारी बनायें।

धींवर का यह उत्तर सुन कर महाराज शांतनु निराश हो गये क्योंकि उनका जेष्ठ पुत्र देवव्रत था और वही सर्वसम्मति से युवराज हो चुका था। अतः मत्स्यगंधा के पुत्रको अपना उत्तराधिकारी बना देने की प्रतिज्ञा वे कैसे कर सकते थे, और विवश होकर चुपचाप लौट आये। लौट तो आये, परन्तु वे मत्स्यगंधा पर आसक्त हो चुके थे। उसका प्राप्त न होना उनके हार्दिक दुःख का एकमात्र आहक्क कारण बन गया। वे अब दिनरात मत्स्यगंधा को प्राप्त करने के लिए मनही मन चिंतित रहने लगे। इस चिंता ने अन्त में इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि सब लोग उसका आंतरिक दुःख जानने की चेष्टा करने लगे। युवराज देवव्रत पूर्णरूप से जान गया कि पिता को कोई आंतरिक दुःख अवश्य है। उसने इसका कारण जानने के लिये कई बार पिता से अनुरोध किया परंतु राजा शांतनु पुत्र के सन्मुख यह गोपनीय विचार कैसे प्रकट कर सकते थे. अत में देवव्रत निराश हो गये।

देवव्रत, पिता के परम भक्त और श्रद्धानु थे। उन्हें पिता के आंतरिक दुःख न जानने के कारण बड़ा क्षोभ हुआ। वे एक

बार बड़े ही खिन्न होकर मंत्री पास गये, और अपनी मानसिक वेदना का कारण प्रकट किया। पिता के दुःख से युवराज को इतना खिन्न देखकर मंत्रीने महाराज शान्तनु के दुःखका कारण स्पष्ट बता दिया, क्योंकि जब वे मत्स्यगंधा पर मोहित होकर धींवर के पास गये थे, उनके संग ही थे। मंत्री से पिताके दुःख का कारण जान कर देवव्रत प्रसन्न हुए और पिता की इच्छा पूर्ण करने केलिये वे उत्साहित हो बठे।

एक दिन मंत्री, सेनापति, राज्य के मुख्य पदाधिकारी तथा प्रसिद्ध २ धनी-मानी पुरुषों को साथ लेकर युवराज देवव्रत धींवर के घर पहुंचे। धींवर ने युवराजका बड़ा ही मान किया और घर पर आने का कारण पूछा। देवव्रत ने कहा—"आप अपनी कन्या का विवाह महाराज से करदें।" मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने केलिये प्रतिज्ञा करता हूं कि "माता सत्यवती के पुत्र को ही राजसिंहासन पर बैठाऊंगा और स्वयं मंत्री रूप से राज्य संचालन में भाग लूंगा।" देवव्रत की इस दृढ़ प्रतिज्ञा पर उपस्थित जन जयध्वनि करने लगे। धींवर ने प्रसन्न होकर कहा—"युवराज! आप महामाया श्रीगंगा के पुत्र हैं, आप सत्यव्रती हैं, आपकी प्रतिज्ञा जीवन भर भंग नहीं हो सकती, परन्तु जो आपकी भावी सन्तान होगी वह आपकी इस प्रतिज्ञा का पालन न करेगी इसी का मुझे ध्यान है, वरना सत्यवती तो आपकी माता हो चुकी है। मुझे आपकी इस प्रतिज्ञा के सन्मुख कन्या-दान कर देने में कोई आपत्ति नहीं है।"

धींवर की इस शंका को निवारण करने के लिये महाप्रतिज्ञ

देवव्रत ने उसी समय दूसरी प्रतिज्ञा भी की। उसने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा—इस समय सबकी उपस्थिति में मैं ईश्वर और आप सबको साक्षी रखकर प्रतिज्ञा करता हूं कि "मैं जन्मभर विवाह न करूंगा, स्त्री का मुख न देखूंगा" बाल-ब्रह्मचारी बनकर रहना ही मेरे जीवन का अब एक व्रत होगा। न विवाह करूंगा न पुत्र होंगे फिर कौन माता सत्यवती के पुत्रों का अधिकार छीनेगा।

महाव्रती देवव्रत की इस भीष्म प्रतिज्ञा के समय देवताओं ने आकाश से पुष्प वृष्टि की और उपस्थित पुरुषों के मुख से "धन्य-भीष्म-धन्य" की जय ध्वनि होने लगी। तभीसे इसी भीषण प्रतिज्ञा के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ा।

धींवरने उसी समय अपनी कन्या सत्यवती को भीष्म जी के संग कर दिया। उन्होंने उसे पिता के सन्मुख उपस्थित करके आदि से अंत तक सारा वृत्तांत कहा और विवाह करने की प्रार्थना की। पुत्र का यह भीषण त्याग सुनकर उन्होंने गले से लगा लिया और परमानंदित होकर शांतनु ने वर दिया कि जब तक तुम स्वयं मरना न चाहोगे कभी तुम्हारी मृत्यु न होगी, बिना चाहे तुम्हें कोई न मार सकेगा।

अंत में बड़े समारोह से सत्यवती से महाराज शांतनु का विवाह हुआ। कुछ कालके बाद सत्यवती के प्रथम पुत्र हुआ जिसका नाम चित्रांगद रक्खा गया। पुनः दूसरा पुत्र और हुआ जिसका नाम "विचित्र वीर्य" रक्खा गया। इन बालकों का पालन-पोषण बड़े यत्न से किया गया। अवस्था आने पर दोनों बालकों को

सर्वांशिक्षायें स्वयं भीष्म जी ने दीं, शस्त्र और शास्त्र की अनुपम शिक्षायें प्राप्त करते हुए दोनों बालकों को छोड़कर महाराज शांतनु ने स्वर्ग प्रयाण किया जिससे सत्यवती को अपने वैधव्य का असीम दुःख हुआ।

बाल ब्रह्मचारी भीष्म जब कुछ शांत हुये तो उन्होंने माता सत्यवती को भी आश्वासन दिया और कहा हे माता! अब धैर्य धारण कर युवराज चित्रांगद को सिंहासनारूढ़ करके अपनी और अपने माता-पिता की इच्छा पूर्ण कीजिये, सिंहासन सूना नहीं रह सकता। आप युवराज चित्रांगद के सुखों को देख २ ही क्रमशः दुःख को भूल जायेंगी।" पुत्र के यह वचन सुनकर सत्यवती का ध्यान एकाएक युवराज चित्रांगद की ओर गया और वह सत्यवती भीष्म की इस प्रतिज्ञा-पूर्ति को देखकर सारा दुःख भूल गई तथा पुत्र को आशीर्वाद देकर चित्रांगद के राज तिलक की आज्ञा दी।

इस प्रकार भीष्म जी ने चित्रांगद को पिता के सिंहासन पर विराजमान करके माता सत्यवती से आशीर्वाद लिया और स्वयं मन्त्री के रूप में रहकर राज्य-कार्य देखने लगे। युवराज चित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों ही पिता तुल्य बड़े भाई भीष्म की आज्ञानुसार कार्य देखने लगे। कुमार विचित्रवीर्य को अभी शिक्षा देने की आवश्यकता थी, अतः भीष्म जी उसे पूर्ण शिक्षा देने का प्रयत्न करने लगे। माता सत्यवती पुत्र के इस महान् त्याग और सत्यव्रत पर इतनी प्रसन्न हुईं कि पति-शोक कतई भूल गईं और तीनों पुत्रों का सुख देख-देख कर जीवन व्यतीत करने लगीं।

बाल-ब्रह्मचारी भीष्म के सन्मुख वीरता तो हाथ बांधे खड़ा था, उनके तेजस्वी स्वरूप के सन्मुख बड़े-बड़े वीरों का हृदय दहल जाता था, उन्होंने अपनी वीरता से राज को ऐसा सुदृढ़ बनाया कि किसी भी राज्य की चमता न थी कि उनकी ओर आंख उठाकर देख सके। कुछ समय के बाद हस्तिनापुर पर महाबली गन्धर्वराज चित्रांगद ने बहुत ही प्रबल आक्रमण किया उस भयंकर युद्ध में युवराज चित्रांगद मारे गये।

ब्रह्मचारी भीष्म ने गन्धर्वराज को परास्त कर छोटे भाई विचित्रवीर्य को सिंहासन पर बैठा दिया और राज्य की नींव पुष्ट करने में लग गये। जब विचित्रवीर्य सयाने हुए तो भीष्म जी ने काशीराज की तीन कन्याओं को हरण करके उनमें से दो अम्बिका तथा अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य से कर दिया और सबसे बड़ी अम्बा को उसके इच्छित पति शाल्वराज के पास भेज दिया।

शाल्वराज ने दूसरे वीर की हरण की हुई स्त्री को विवाहने से इन्कार कर दिया जिसका फल यह हुआ कि अम्बा निराश हो गई। भीष्म ने विवाह न करने की प्रतिज्ञा ही कर रक्खी थी, उन्होंने भी उनसे विवाह न किया। उसकी यह दशा हरण के कारण हुई, उसने दुःखी होकर भगवान् परशुराम की शरण ली। ये महात्मा भीष्म के गुरु थे, उन्होंने अम्बा को भीष्म के पास लेजाकर उनसे विवाह करने को कहा। सत्यव्रती भीष्म जी ने अपनी प्रतिज्ञा के कारण गुरु की बात न मानी इस पर परशुराम जी ने शिष्य से युद्ध किया, परन्तु उन्हें परास्त होना पड़ा।

अम्बा ने फिर दुःखी होकर शिव की शरण ली और दूसरे जन्म में पति से बदला लेने का वरदान प्राप्त किया, यही अम्बा आगे जन्म में शिखण्डी के नाम से प्रसिद्ध हुई जिसने महाभारत के अन्तिम युद्ध में पांडवों का सेनापति बनकर भीष्म को मारा। इस कथा का वर्णन आगे दिया जायगा।

काशीराज की दोनों कन्याओं को पाकर विचित्रवीर्य को बड़ा आनन्द हुआ, परन्तु यह आनन्द कुछ दिन ही रहा अन्त में क्षय रोग हो जाने के कारण उनकी मृत्यु हुई विचित्र-वीर्य की मृत्यु हो जाने पर कुरुवंश का आगे चलना बन्द हो गया, क्योंकि महात्यागी भीष्म ने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी। वह विवाह करते तो आगे वंश चलता, परन्तु वे माता के आज्ञा देने पर भी अपनी प्रतिज्ञा से न टले और आज तक भी उनकी इस दृढ़ प्रतिज्ञा की महिमा अति भक्ति-भाव से गाई जाती है।

सत्यवती के शान्तनु से विवाह होने से पहले अकस्मात पराशर ऋषि से एक पुत्र हो चुका था जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है कि "भगवान् वेदव्यास इन्हीं के गर्भ से उत्पन्न हुए और प्रथम ही तप करने चले गये। जिस समय महामुनि वेदव्यास तप करने चले गये थे तब वे माता से कह गए थे कि कभी संकट उपस्थित हो तो मुझे स्मरण करना। अब अकस्मात् यही संकट उपस्थित हुआ है कि कुरुवंश आगे कैसे चले? सत्यवती ने महात्मा भीष्म से इस महाप्रतापी

पुत्र-जन्म का हाल कहा। जिसे सुनकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए और अपने भ्राता महामुनि वेदव्यास जी से मिले, माता भी साथ ही थी।

पाण्डु धृतराष्ट्र और विदुर

सत्यवती ने पुत्र वेदव्यास से कुरु-वंश चलाने का उपाय पूछा तो उन्होंने कहा—यदि मेरी दोनों भावजें अम्बिका और अम्बालिका मेरी सेवा में निःसंकोच होकर आवें तो मैं उन्हें पुत्रवती होने का वरदान दूंगा जिससे वंश आगे चलेगा" सत्यवती ने इस कठिन कार्य को भी वंश रक्षा के लिए किया अर्थात् दोनों बहुओं को किसी प्रकार समझा-बुझा कर श्री व्यासदेव के सम्मुख किया। पहले उनके सम्मुख अम्बिका गई तो व्यासदेव के तेज के सम्मुख उसकी आंखें बन्द हो गई। उसे पुत्रवती का वरदान देकर व्यासदेव ने कहा पुत्र तो होगा परन्तु अन्धा होगा' वही हुआ, उसके गर्भ से धृतराष्ट्र का जन्म हुआ।

अब अम्बालिका भी गई और व्यासदेव को देखकर मारे भय के उसका मुंह पीला पड़ गया। उसे भी वरदान मिला पुत्र जो उत्पन्न हुआ उसका शरीर पीले रंग था जिससे उसका नाम पांडु पड़ा।

दोनों पुत्र होने पर सत्यवती ने अपनी बहू अम्बिका से कहा "एक पुत्र जन्मान्ध हुआ, दूसरा पीत वर्ण का हुआ किसी प्रकार अब कोई सुयोग्य और सुन्दर पुत्र प्राप्त करे।" यह सुनकर अम्बिका दूसरी बार व्यासदेव से आशीर्वाद प्राप्त करने की बात सास से कह कर चली गई। सत्यवती ने भी व्यासदेव को फिर वरदान देने को कहा तो वे माता की

आज्ञा टाल न सके। इधर अम्बिका भय के मारे आप तो गई नहीं परन्तु अपने कपड़े पहना कर अपनी दासी को भेज दिया। उस दासी के गर्भ से ही परम धर्मात्मा महानीतिज्ञ धर्मवीर महात्मा विदुर का जन्म हुआ।

वे थे तो दासीपुत्र परन्तु धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर तीनों एक समान ही भाइयों की तरह परिपालित हुए।

कर्ण का जन्म

ज्येष्ठ पुत्र धृतराष्ट्र का विवाह यथा समय गान्धार के राजा की कन्या "गान्धारी" से हुआ। जिस समय गांधारी विवाह कर पति गृह में आई और उसने पति को अन्धा देखा तो उसने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली और जन्म भर पति के समान अन्धा ही बन कर रहने की प्रतिज्ञा की।

सती गांधरी आज तक पूजनीय है उसने पति सेवा से वह यश प्राप्त किया कि वह आज भी सती शिरोमणि के नाम से पुकारी जाती है।

धृतराष्ट्र के दूसरे भाई पांडु का विवाह यदुवंशी राजा सूरसेन की कन्या कुन्ती के साथ हुआ। कुन्ती देवी बाल्यकाल में ही अतिथि सत्कार में बड़े उत्साह से भाग लेती थी। एक समय उनके गृह में महर्षि दुर्वासा का आगमन हुआ। कुन्ती ने उनकी ऐसी सेवा की कि वह बड़े ही प्रसन्न हुये और उन्होंने उसे एक महामंत्र बताया और उसका फल कहा कि "इस मंत्र द्वारा तुम जिस देवता को स्मरण करोगी वह तुम्हारे सम्मुख आकर पुत्र का बरदान देगा।"

कुन्ती के उनके जाने के बाद उस मंत्र की परीक्षा करने का विचार किया और मंत्र पढ़कर सूर्य्यदेव को स्मरण किया भगवान सूर्य्य अपना तेज सम्हाल कर उसके सामने प्रगट हुये और उन्होंने पुत्रवती होने का वरदान दिया। यथा समय जवच कुण्डल पहने हुये एक महा तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ। कुन्ती कुंवारी थी बालक के जन्म होने पर वह बड़ी ही लज्जित हुई और उसने अपना भेद छिपाने के लिये उस पुत्र को नदी में बहा दिया। उस बहते हुये बालक को अधिरथ नामक सारथी ने पाया और घर ले जाकर अपनी स्त्री राधा को दिया। इस बालक का नाम वसुसेन रक्खा गया। आगे चलकर इन्हीं का नाम महावीर कर्ण पड़ा।

कौरव और पाण्डव

पांडु को शिकार और बन भ्रमण का बड़ा शौक था वे एक समय रानियों सहित बन बिहार करने के लिये गये। वहां उन्होंने मृग रूपी एक ब्राह्मण कुमार को पत्नी सहित देखा और मृग को मारा। जब उन्हें पश्चाताप हुआ कि वास्तव में वे ऋषि कुमार हैं जो मृग रूप में अपनी पत्नी सहित थे तो वे उससे क्षमा मांगने गये परन्तु ऋषि कुमार ने शाप देकर प्राण त्याग दिये कि "तुम भी पत्नी के संग रह कर इसी तरह मरोगे।"

'शाप का फल तो होना ही है' यह जानकर पांडु बड़े दुःखी हुये और लौटकर हस्तिनापुर नहीं गये। वे रानियों सहित घोर तप करने बन को चले गये जिससे हस्तिनापुर में

शोक छा गया और सब राज्य-कार्य विदुर जी की सहायता से करना पड़ा।

ऋषि मुनियों के साथ रहते उन्हें ज्ञान हुआ कि निःसंतान दम्पति स्वर्ग में जाने के योग्य नहीं, तो उन्हें निःसंतान होने के कारण बड़ा दुःख हुआ। पति का यह कष्ट देखकर कुन्ती देवी ने अपनी बाल्यावस्था की सारी कथा पांडु को सुनाई जिसे सुनकर पांडु बड़े प्रसन्न हुये और उन्होंने दुर्वासा ऋषि के दिये मंत्र द्वारा पुत्र प्राप्त करने की आज्ञा दी। कुन्ती ने वैसा ही किया।

कुन्ती ने पहले धर्मराज के वरदान से जो पुत्र प्राप्त किया उसका नाम ही युधिष्ठर पड़ा फिर क्रमशः इसी प्रकार कुन्ती देवी ने वायुदेव से 'भीम' इन्द्र से 'अर्जुन' जैसे तीन पुत्र प्राप्त किये।

कुन्ती की सौतन अर्थात् पांडु की दूसरी रानी माद्री थी। इन दोनों का भी परस्पर बड़ा प्रेम था। कुन्ती ने माद्री को भी वह मंत्र बताया और उसे पुत्रवती होने को कहा। माद्री के गर्भ से भी दो पुत्र नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। इस प्रकार पांडु के पांच पुत्र महा तेजस्वी और प्रबल पराक्रमी हुये जिनका नाम पाण्डव पड़ा।

इधर धृतराष्ट्र भी भ्राता पाण्डु के त्यागी हो जाने पर किसी तरह राज्य का कार्य चलाते रहे। एक बार महामुनि वेदव्यास का आगमन हस्तिनापुर में हुआ। गांधारी ने उनकी बड़ी सेवा की जिससे प्रसन्न होकर वेदव्यास जी ने एक सौ गुणवान पुत्र होने का वरदान दिया। महारानी गांधरी

के सौ पुत्र उत्पन्न हुये जिनमें सबसे बड़े दुर्योधन दूसरे दु:शासन एवं विकर्ण आदि नामों से विख्यात हुये। ये सौ भाई कौरवों के नाम से पुकारे जाने लगे।

भाइयों में फूट

ऋषि कुमार के शाप से पांडु का देहांत बन में ही हुआ उनके शोक में रानी माद्री भी स्वर्ग सिधारीं। अब कुन्ती देवी अकेला पति शोक में व्याकुल रहने लगीं। ऋषिमुनियों ने उसे बहुत कुछ धैर्य दिया और सारा समाचार हस्तिनापुर भेजा। हस्तिनापुर में पांडु की मृत्यु का समाचार पहुंचने ही चारों ओर शोक की घटा छा गई। भीष्म धृतराष्ट्र, विदुर आदि बन में गये और पाण्डु व रानी माद्री का शव हस्तिनापुर लाकर दोनों का दाह संस्कार किया।

अब से कुन्ती सहित पांचों बालक हस्तिनापुर में बड़े यत्न से रक्खे गये और उनका लालन पालन होने लगा। एकसौ एक भाई कौरव और पांचों भाई पांडव परस्पर एक संग रह कर बाल्यकाल व्यतीत करने लगे। सब भाई एक संग ही खेलने और विद्या अभ्यास करने लगे।

पांचों पांडव बाल्यकाल ही से नम्र स्वभाव, प्रतिशाली और विशेष बुद्धिमान दिखाई देने लगे; जिससे सबका विशेष प्रेम पांडवों पर ही होने लगा। कौरवों का क्रूर स्वभाव था, धूम धड़ाम करने, एक दूसरे से लड़ने और सदैव क्रोधी बने रहने के कारण कौरवों पर गुरुजनों तथा वृद्ध पुरुषों की श्रद्धा न रही।

कौरव और पांडुओं में बाल्यकाल से ही झगड़ा रहने लगा। दुर्योधन पांडवों से सदैव विरोध ही रखने लगा उसके भाई दुःशासन आदि भी उन पांचों से मनमुटाव रखते थे। इधर एक सौ एक और उधर पांच भाई थे, परन्तु उन पांचों के तेजस्वी स्वरूप को देख २ कर कौरव सहम जाते थे और पढ़ने लिखने तथा अस्त्र विद्या में भी ये सब उन पांचों का मुकाबला नहीं कर सकते थे इस कारण कौरवों को उनसे सदैव लज्जित होना पड़ता था। भीम बाल्यकाल से ही बड़े बलवान थे और कभी २ खेल कूद में कौरवों के झगड़े पर उन्हें पीट दिया करते थे इस कारण दुर्योधन मन ही मन भीम को शत्रु समझने लगा था परन्तु भीम के सम्मुख उसका वश न चलता था। बाल्यकाल से ही दुर्योधन अपने आप पांचों भाइयों का बैरी हो गया था।

पांडवों ने अपने सदाचार, गुरुजनों के मान और विद्या लाभ करने में पूर्ण प्रयत्न दिखाकर सब का मन मोह लिया। महात्मा विदुर महाबाहु भीष्म आदि उन्हें बड़ा ही प्यार करने और आशीर्वाद देने लगे जिसे देखकर दुर्योधन कुढ़ने लगे। एक समय गंगा के किनारे जाकर बनकी शोभा देखने और जल-क्रीड़ा करने के बहाने दुर्योधन सब भाइयों के साथ पांडवों को भी ले गया, वहां जाकर खूब खेल-कूद मची इसी खेल-कूद में दुर्योधन ने भीम को सदैव के लिये मिटा देने का उपाय किया अर्थात् उसने विष मिलाकर भीम के लिये मिठाइयां तैयार कराईं और जब खेल समाप्त हुआ तो सब खाने के लिए बैठे।

भोजन समाप्त करते ही दुर्योधन ने सबको जल क्रीड़ा करनेके लिये तैयार किया और सबके सब जलमें उतरकर खेलने लगे। खेलते खेलते जब संध्या हुई तो सब बाहर निकले और देर होने का ध्यान कर सब तुरंत ही जाने के लिये तैयार हो कर चल पड़े। दुर्योधन के सिवा किसी को भीमका ध्यान न था भीम पर विष ने पूरा असर किया था और वह बेहोश होकर जल के किनारे पर पड़े थे। दुर्योधन ने उसे उसी तरह पड़े रहने दिया और सब भाइयों तथा पांडवों को लेकर जल्द वहां से चल पड़ा। उसने रास्ते में सबको हँसाना शुरू किया और ऐसी बातें सुनानी शुरू कीं कि किसी को भी भीम का ध्यान न रहा।

सब अपने २ स्थान पर गये परंतु दुर्योधन अपने प्रधान सलाहकार दुःशासन को लेकर गंगा तट पर पहुंचा और बेहोश भीम को रस्सी से बांध कर गंगा में फेंक दिया। दुर्योधन शत्रु को इस तरह मिटा कर घर चला आया और किसी को पता न लगा।

कुछ ही समय बाद चारों भाई पांडवों ने जब भीम को न देखा तो वे सब उसे खोजने लगे। खोजखाज खूब की गई परन्तु भीम का पता न लगा। होते होते कोहराम सा मच गया और कुन्ती देवी भीम के लिये व्याकुल होने लगीं। राजदूत आदि चारों तरफ दौड़ाये गये पर कुछ पता न लगा। अन्त में महात्मा भीष्म तथा विदुर आदि ने कुंती को धैर्य दिया और कहा कि "भीम के लिए चिंता न करो वह स्वयं

आ जायगा।" यह सुनकर कुंती ने धैर्य धारण किया परन्तु खोज बराबर जारी रही।

भीम जिम समय बांधकर फेंके गये तो वे डूबते २ नाग-लोक (पाताल) में पहुंचे। सर्पों ने मनुष्य को वहां देखा—तो वे बड़े ही बिगड़े और चारों ओर से भीम की लाश को घेर कर डसने लगे। जिसे भगवान बचाना चाहे उसे कौन मार सकता है? भीम को तो मिठाई में विष दिया गया था और वह विष उस शरीर में छाया हुआ था। जब नागों के विष ने उसके शरीर में प्रवेश किया तो पहला विष उतर गया और भीम को होश हो गया। होश में आते ही उन्होंने उठकर ऐसा झटका दिया कि रस्सी के बंधन टूट गये और वे सर्पों को पकड़ २ कर तोड़ने लगे जिससे नाग भयभीत होकर अपने राजा वासुक के पास जाकर अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करने लगे।

नागराज वासुक भी प्रजा का रोना सुनकर बड़े ही क्रोधित होकर आये परंतु जब उन्होंने भीम का सन्मुख देखा तो ये एकदम शांत होगये। भीमसेन को देखकर वासुक ने पहचान लिया वह कुन्ती के पुत्र थे और कुंती के पिता "कुंती भोज" वासुक के दोस्त थे। उन्होंने भीमसेन को अपने कंठ से लगा लिया और बड़े प्यार से महल में ले गये वहां ले जाकर वासुक ने तुरंत ही भीम को ऐसी अमृत तुल्य औषधि पिलाई कि भीम के शरीर से सारा विष दूर होगया और वह नींद में भर कर सो गये।

जब औषधि का प्रभाव कम हुआ तो आठ दिन के बाद

भीम की आंखे खुली वे चंगे होगये और उठ बैठे, उसके शरीर से एक प्रकार का तेज प्रकटित हो उठा तथा बल का पुनः सञ्चार हो गया। नागराज वासुकि ने उस समय सबका कुशल समाचार पूछ और वहां आने का कारण बताने को कहा, भीमसेन ने कहा "मुझे खबर नहीं किसने बांधकर फेंक दिया। मैंने दुर्योधन की दी हुई मिठाई खाई थी इसके बाद हम सब भाई खेलने लगे। जलमें खेलते २ मैं बेहोश होगया फिर नहीं पता कि क्या हुआ?"

वासुकि ने सारा हाल सुनकर समझ लिया कि "यह सब दुर्योधन की काली करतूत है।" उन्होंने भीम को कहा "पुत्र अब तुम्हें कोई न जीत सकेगा" यह कहकर भीम को एक ऐसी औषधि पिलाई जिससे भीम के शरीर में दस हजार हाथी का बल उत्पन्न होगया। उन्हें इस अवस्था में देखकर नागलोक भयभीत होने लग गया।

भीम ने वासुकि के चरणोंमें सर रखकर आशीर्वाद पाया और फिर हस्तिनापुर जाने की आज्ञा मांगी वासुकि ने उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर विदा किया। विदाई के समय वासुकि ने दुर्योधन से सावधान रहने और चारों भाइयों की रक्षा करने का उपदेश दिया इसके बाद नागों ने उनकी पूजा की और अपने कंधों पर बिठाकर नागलोक से ले चले अपनी सीमा तक पहुंचा कर उन्होंने भीमसेन को विदा किया।

इधर भीम के न आने से हस्तिनापुर में बड़ी खलबली सी मची हुई थी, कुन्ती अपने प्रिय पुत्र के लिये व्याकुल हो रही

थी, चारों भाई उदास होकर बैठे भीम की मंगलकामना कर रहे थे, इसी समय झूमते हुए भीमसेन ने प्रवेश किया। उसे देखते ही सबका हृदय प्रफुल्लित हो उठा कुन्ती ने दौड़कर उसे कंठ लगा लिया, भाइयों ने भी परस्पर भेंट की और उन्हें घेरकर बैठे तथा सब हाल पूछने लगे। भीम ने आदि से अन्त तक सब वृतान्त कह सुनाया जिसे सुनकर सब के सब अवाक् हो गये। दुर्योधन पर चारों भाइयों ने कोप किया और मारे क्रोध के कांपने लगे। कुन्ती ने उस समय सब को शांत किया तथा दुर्योधन की नीचता से सर्वदा सावधान रहने और इस होतव्य को इसी तरह गुप्त रहने देने का उपदेश दिया।

भीम के आने का समाचार बात की बात में सर्वत्र फैल गया। सब के सब पास आकर इतने दिन गुप्त रहने का कारण पूछने लगे। भीमसेन ने इधर उधर के सैल-सपट्टे की बात बताकर वह विषय समाप्त किया। कुन्ती को बधाई देकर सबके सब लौट गये। कुन्ती ने पुत्र के सकुशल लौट आने तथा नवीन जन्म धारण करने के समान पुत्र पाने और महाबली होने की खुशी मनाई। दुर्योधन यह देखकर अति विस्मित हुआ और भीम का यह बलशाली तथा तेजस्वी स्वरूप देखकर मन ही मन भयभीत रहने लगा।

द्रोणाचार्य

एक समय कौरव तथा पांडव मिलकर मैदान में गेंद खेल रहे थे। खेलते २ उनकी गेंद एक कुंए में गिर पड़ी। खेल बन्द होगया और सबके सब उस गेंद को कुएँ से निका-

लने का उपाय सोचने लगे। सबने प्रयत्न किया, परन्तु गेंद को न निकाल सके। ठीक समय पर एक ब्राह्मण कुमार कहीं से आ निकले और वह भी उनमें शामिल होकर तमाशा देखने लगे।

आगन्तुक ब्राह्मण कुमार को देखकर कौरव तथा पांडवों ने कहा—तुम यह तमाशा ही देख रहे हो क्या हमारी गेंद निकालने का भी कुछ उपाय कर सकते हो ?" यह सुनकर ब्राह्मण कुमार ने कहा कि तुम सब अस्त्र विद्या सीख रहे हो क्या गेंद भी नहीं निकाल सकते, मैं अभी निकाले देता हूं" यह कहकर उन्होंने तिनके फेंक २ कर बड़े कौशल से गेंद को बाहर निकाल दिया। उस ब्राह्मण का यह कौशल देखकर सब चकित हो गये और उन्होंने उसे प्रणाम किया तथा परिचय पूछा। ब्राह्मण ने कहा "मैं ब्राह्मण हूं" जो कुछ आपने देखा है यह सब अस्त्र विद्या का ही प्रभाव है। यह वृत्तान्त तुम सब जाकर दादा भीष्म जी से कहना जो तुम्हें शिक्षा दे रहे हैं।" यह सुनकर सबने फिर उन्हें प्रणाम किया और चले गये।

यह समाचार तुरन्त ही पांडवों ने दादा भीष्म को जाकर सुनाया महात्मा भीष्म ने उसी समय उन्हें बुलाया और उनका हाल पूछा। महात्मा ने कहा "मैं महर्षि भरद्वाज का पुत्र हूं, मेरा नाम द्रोण है। मैंने और पांचाल देश के राजकुमार द्रुपद ने एक संग ही विद्याध्ययन किया है। मैं अग्निवेश का परम शिष्य धनुर्वेद हूं। अब मैं अपनी अस्त्र शिक्षा समाप्त कर चुका हूं। मैं अपना निर्वाह किसी प्रकार करना चाहता हूं। महर्षि गौतम

की कन्या से मेरा विवाह हुआ है अब में सपत्नीक हूं। ईश्वर की कृपा से मेरे एक पुत्र भी है जिसका नाम 'अश्वत्थामा' है। मेरी यह अवस्था शोचनीय है और यह मेरे सहपाठी द्रुपद के कारण से है जो पिता के पश्चात् सिंहासन का अधिकारी हुआ है। मैं पांचाल देश में ही गया था और अब वहीं से आ रहा हूं। द्रुपद ने मेरा अपमान किया है और वचन देकर फिर गया है। "यह वृतान्त फिर कहूंगा, इस समय आप मुझे आज्ञा करें कि मैं क्या उपाय करूं ?"

यह सुनकर महात्मा भीष्म ने उन्हें अपने हृदय से लगा कर कहा "आप इसी राज्य में सुख पूर्वक रहें आपका उचित सत्कार किया जायगा। आप पूजनीय हैं, इस राज्य पर अपना पूर्ण अधिकार समझिये। अब आप राजकुमारों को अस्त्र विद्या में निपुण कर संसार में यश के भागी बनिये। आपके शिष्यगण राजा द्रुपद को नीचा दिखायेंगे और आप के अपमान का बदला लेंगे।"

भीष्म जी के इन वचनों को सुनकर द्रोण बड़े ही प्रसन्न हुये और उन्होंने कौरव तथा पांडवों को अस्त्र विद्या सिखाने का वचन दिया। द्रोण बड़े सम्मान से हस्तिनापुर में रक्खे गये। उन्होंने अपना इतना सम्मान देखकर राजकुमारों को अस्त्र विद्या की ऐसी शिक्षा देनी आरम्भ की कि थोड़े ही दिनों में वे चमत्कार के काम करते दिखाई देने लगे, जिसे देखकर वृद्ध जन बड़े ही प्रसन्न हुये। द्रोण को द्रोणाचार्य का पद दिया तथा उनका बहुत सम्मान बढ़ने लगा।

द्रोणाचार्य ने एक दिन अपने शिष्यों को इकट्ठा करके कहा, "पुत्रो ! मैं तुम्हें पूर्ण रूप से शिक्षा दूंगा, परन्तु तुम्हें मेरा एक प्रिय कार्य करना होगा ।" यह सुन कर सब चुप रहे पर अर्जुन ने गुरू की बात का उत्तर दिया कि "गुरुदेव ! चाहे वह कार्य कितना ही कठिन हो" आपका कार्य मैं अवश्य ही करूंगा । अर्जुन की यह गुरु-भक्ति देखकर द्रोणाचार्य बड़े प्रसन्न हुये और उन्होंने अर्जुन को अपना सर्वश्रेष्ठ शिष्य समझ कर विशेष रूप से शिक्षा देनी आरम्भ की ।

जिस पर गुरु की कृपा हो वह सर्वश्रेष्ठ क्यों न हो ? द्रोणाचार्य के पास दुर्योधनादि कौरव, पांचों पांडव, अश्वत्थामा तथा वह तेजस्वी बालक वसुसेन भी शिक्षा पाने आता था जिसे अधिरथ सारथी ने पाला था और जो पांडवों में सबसे बड़ा भाई कुन्ती पुत्र था । सब शिक्षा पाते थे पर गुरू की आज्ञानुसार पांडव ही सर्व श्रेष्ठ निकले । अर्जुन अद्वितीय धनुर्धारी निकले, अर्जुन का सामना करने के योग्य एकमात्र वसुसेन ही था, जिसका नाम आगे चलकर 'कर्ण' हुआ । यह महादानी था क्योंकि साक्षात् सूर्य का पुत्र था और पांडवों का भाई था, परन्तु इस भेद को कुन्ती माता ही जानती थी ।

द्रोणाचार्य की शिक्षा से बाण विद्या में अर्जुन, गदा युद्ध में दुर्योधन तथा भीम, रथियों में युधिष्ठर और तलवार चलाने में नकुल और सहदेव ही सर्वश्रेष्ठ निकले । कर्ण भी इसकी बराबरी में था और अश्वत्थामा भी । समय उपस्थित

होने पर द्रोणाचार्य ने फिर अपने शिष्यों को इकट्ठा करके राजा द्रुपद के अपमान का हाल बताया और कहा शिष्यों द्रुपद मेरा सहपाठी है उसने प्रतिज्ञा की थी, जब मैं राज पाऊंगा तो आपको अपने पास रख कर सुख भोग कराऊंगा परंतु जब वह राजा हुआ तो मैं भी अपनी दरिद्र अवस्था में वहां सुख भोगने के लिये मित्र समझ कर पास गया, उसने मुझे पूछा तक नहीं और मुझे अपमानित होकर वहां से आना पड़ा। अब तुम सब अस्त्र विद्या में निपुण हो गये हो। मैं तुम से यही गुरुदक्षिणा चाहता हूं। जाओ उसे पकड़ कर उसे मेरे सामने उपस्थित करो।

गुरु की आज्ञा पाकर कौरवों तथा पांडवों ने पांचाल देश पर चढ़ाई कर दी। द्रुपद ने जब सुना तो वह भी मैदान में आया। कौरवों को तो भागना पड़ा परन्तु भीमसेन की गदा और अर्जुन के बाणों के सामने उसे परास्त होना पड़ा। अर्जुन द्रुपद को बांध कर गुरु के सामने ले आये जिनसे द्रोणाचार्य ने उसे बहुत आशीर्वाद दिये और द्रुपद को धिक्कारा। द्रुपद ने करनी का फल पाकर आचार्य से क्षमा मांगी और अपना आधा राज देकर उन्हें प्रसन्न किया।

इसी समय से द्रोणाचार्य का विशेष स्नेह पांडवों पर रहने लगा और उन्होंने पांचों भाइयों को कुछ गुप्त शिक्षा भी दी। अर्जुन को उन्होंने बड़े २ चमत्कारी अस्त्र दिये और उनको चलाना भी सिखाया। होते २ कौरव पांडव सयाने हो गये और गुरु द्रोणादि की कृपा से पांचों भाई महावीर हो

कर चारों दिशाओं में विख्यात होगये। उनके वीरत्व का डंका बजने लगा।

दुर्योधन को पांडवों का वीरत्व देख २ कर बड़ा भय होता था उसने उन्हीं के समान महाबली कर्ण को अपने साथ मिलाया और भाइयों की तरह अपने पास रक्खा। कर्ण अपना यह सम्मान देखकर दुर्योधन का भक्त होगया और उसी के संग रहकर आनंद मनाने लगा।

कौरवों की दुष्टता

जब से भीमसेन के साथ दुर्योधन ने दुष्टता की थी तब से पांडव भी समझ गये थे कि कौरवों से सदैव हमारा द्वेष ही रहेगा, परंतु फिर भी वे उन्हें भाइयों की तरह ही मानते थे।

पांडव सत्य की मूर्ति थे कपट या किसी प्रकार के नीच विचार उन्हें छू तक नहीं गये थे। उनके शुद्ध आचरण को देखकर प्रजा भी उनकी भक्ति करने लग गई। वे धर्म पर सदा दृढ़ रह कर कुमार अवस्था में ही प्रजा का हित चाहने लगे। यदि प्रजा पर किसी प्रकार का संकट उपस्थित हो तो वे पांचों भाई उसमें भाग लेते थे। उनके इस व्यवहार से, बल से, चमत्कारी कार्यों से प्रजा, गुरुजन आदि इतने प्रसन्न थे कि हस्तिनापुर के राज्य सिंहासन पर धर्मराज युधिष्ठिर को विराजमान करने की उनकी इच्छा होगई कुछ समय पाकर उनकी योग्यता और भी बढ़ी तो कौरवों के सिवाय मनुष्य मात्र की श्रद्धा युधिष्ठिर आदि पांचों भाइयों पर पूर्ण रूप से हो गई।

कौरव इस बात से घबगये कि राज्य के अधिकारी अब

पांडव होंगे। दुर्योधन अपने पिता धृतराष्ट्र के पास जाकर रोया कि "प्रजा राज्य के योग्य युधिष्ठिर को समझती है, आप अन्धे हैं इसलिये राज्य के योग्य नहीं महात्मा भीष्म राज्य-सिंहासन न लेने की प्रतिज्ञा आदि से ही किये हैं राज्य भी पांडु का है। जब वे त्याग कर चले गये तभी आपने सम्हाला, उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर उस तरह भी अधिकारी हैं। आप अन्धे थे तो आदि में ही राज्य आपको नहीं, मिला यद्यपि आप बड़े भाई थे। जब पांडु ही योग्य ठहराये गये थे तो शुरू से ही उनका उत्तराधिकारी युधिष्ठर है फिर क्या पांडव राज्य भोगेंगे और हम इनके गुलाम बनकर रहेंगे?

पुत्र की यह बात सुनकर धृतराष्ट्र का भी मन पलट गया और वे अपने पुत्रों की बढ़ती और राज्य प्राप्ति देखने के लिये उबल पड़े। यद्यपि धृतराष्ट्र जानते थे कि "मेरे पुत्र दुराचारी और क्रूर हैं। कोई भी इनके व्यवहार से प्रसन्न नहीं है। पांडव सर्वगुण सम्पन्न और योग्य हैं सभी उनसे प्रसन्न हैं" तथापि वे पुत्रों की तरह ईर्ष्या में लुप्त होकर पुत्रों की हां में हां मिलाकर दुर्योधन को राजा बनाने का उपाय सोचने लगे।

महात्मा विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य आदि वृद्धजन धृतराष्ट्र तथा उसके पुत्रों की कूटनीति को समझ गये थे इसलिये सबका पूर्ण स्नेह पांडवों की ओर ही हो गया था इस कारण कोई उपाय दिखाई न देता था। अन्त में कौरवों तथा कर्ण, और दुर्योधन के मामा शकुनी आदि का यह विचार स्थिर

हुआ कि साल दो साल के लिये पाण्डवों को वर्णावत (एक बड़ा ही रमणीक विभाग) की सैर के लिये भेज दिया जाय और जब वे चले जायं तो राज्य के अधिकारियों को धन से प्रसन्न करके अपने वश में किया जाय। प्रजा को भी अपने कार्यों से प्रसन्न किया जाय और राज्य पर अपनी धाक जमाई जाय। यह विचार धृतराष्ट्र को बताया गया उन्होंने भी ठीक समझा और एक बार राज दरबार में "वर्णावत" की प्रशंसा खूब की गई जिसे सुनकर पांडव वहां की सैर के लिये धृतराष्ट्र से आज्ञा मांगने लगे।

"धृतराष्ट्र तो यही चाहते थे उन्होंने कह दिया थोड़े दिन में चले जाना!" दो दिन बाद ही दुर्योधन ने यह सोचा कि "पांडव वर्णावत तो जायेंगे ही यदि किसी उपाय से उन्हें मार ही डाला जाय तो सर्वदा के लिये हम सब राज्य के अधिकारी बन जायें।" दुर्योधन ने अपने सलाहकार एक कपटी मन्त्री पुरोचन को बुलाकर सलाह की। यह बात तय की गई कि वर्णावत में एक लाख का कपड़ा और तेल आदि जलने वाले पदार्थों से महल बनाया जाय, उनके नीचे बारूद भर दी जाय। पांडव वहीं पर ले जाये, जायें कुछ दिन बाद मौका पाकर उस महल में आग लगा दी जाय जिससे वे जलकर भस्म हो जावें और हमारे षड्यन्त्र का किसी को पता भी न लगे।" यह विचार स्थिर किया गया और धन देकर दुर्योधन ने दुष्ट पुरोचन को तुरन्त वर्णावत भेज दिया। इस गुप्त बात को सगा भाई कर्ण और दुर्योधन का मामा शकुनी भी जानता था क्योंकि यह एक ही मंडली थी।

दुष्ट पुरोचन ने वरणावत् जाकर बड़ी शीघ्रता से लाक्षा-गृह तैयार कराया और दुर्योधन को समाचार दिया। अब उधर पांडव भी वरणावत जाने के लिये तैयार हो गये माता कुन्तीभी पुत्रों को अकेले न भेजने केलिये साथ ही जानेको तैयार हो गई। सब तैयार हुये तो उनका प्रबन्ध धृतराष्ट्र ने बड़ी उत्तमता से किया और बड़े ठाठ से उन्हें भेजा जिससे उन्हें वहां आराम मिले और वे वहां अधिक दिन तक रहें।

चलने के समय भीष्म, विदुर, द्रोण आदि उपस्थित थे उन्हें इस पर कुछ शंका भी हुई परन्तु उन्हें विदा किया गया। हस्तिनापुर से कुछ दूर आगे तक लोग छोड़ने भी गये। महात्मा विदुर दुर्योधन की दुष्टता का समाचार जान गये थे इसलिये उन्होंने चुपचाप ही युधिष्टिर को सारी बात बताकर सावधान कर दिया।

वरणावत जाकर पांडव एक सुन्दर भवन में उतरे दुर्योधन ने उनकी खातिर का सब सामान भिजवाया था। वे वहां बड़े आनन्द से रहने लगे। युधिष्ठर ने माता कुन्ती तथा भीमसेन को भी दुर्योधन की नीचता बता दी जिससे वे भी सावधान रहे। प्रयः दस दिन के बाद दुष्ट पुरोचन ने उस नये महल की बड़ी तारीफ की और वहीं रहने की प्रार्थना की। युधिष्टिरादि पांचों पांडव माता कुन्ती सहित उस लाक्षागृह में जान बूझ कर चले गये जिससे पुरोचन आदि दुष्टों को पता न हो कि हम सावधान हैं।

लाक्षागृह में जाने की पहली रात्रि में ही पांचों पांडवों की

सलाह हुई जिससे यह तय हुआ कि "रात्रि के समय रोज जमीन के अन्दर ही अन्दर सुरंग खोदी जाय जो कहीं दूर जंगल में जाकर पूरी की जाय।" इसके बाद दूसरी रात में ही भीमसेन तथा महात्मा विदुर का भेजा हुआ एक गुप्तचर इन दोनों ने मिलकर जमीन खोदकर इतना बड़ा स्थान बना लिया जिसमें आठ आदमी छिपकर सो सकें। स्थान बनाकर रात को पांचों भाई तथा कुन्ती वहीं सोये।

बड़ी ही कोशिश से पांडवों ने रात जाग २ कर यह सुरंग तैयार की जो वहां से कई कोस दूर एक विकट वनमें जा निकली। सुरंग बन गई तो पांडव निश्चिन्त हुये। जब रात को सब सो जाते थे तो ये छहों सुरंग में सोते थे। इसी प्रकार कुछ दिन बीते तो पांडवों ने विचार किया कि "इस रोज सुरंग में सोने का कष्ट क्यों उठाया जाय। दुष्ट पुरोचन यहीं सोता है हम खुद इस महल में आग लगाकर क्यों न निकल चलें जिससे पुरोचन को करनी का फल मिले और हमारी जान भी बचे। इस तरह रोज कहां तक सावधान रहेंगे, इससे तो वन में ही रहा करेंगे और दुर्योधन कभी पीछा न करेगा और जान जायगा कि वे संसार में नहीं हैं" यह बात सबको जंची और दो दिन बाद यही करने का विचार स्थिर हो गया।

दूसरे ही दिन माता कुन्ती ने पुत्रों की मंगल कामना के लिए उसी महल में ब्रह्मभोज किया और अभ्यागतों को बहुत कुछ दान दिया। इस समय एक केवट-विधवा स्त्री (मल्लाह

जाति की) अपने पांच पुत्रों सहित वरणावत आई थी इसने भी भोजन और दान पाया। यह पुण्य कार्य दो दिन होता रहा। इसी दूसरे दिन रात्रि में पांडवों को दुष्ट कौरवों के षड्यन्त्र से बचे रहने के लिये और दुष्टों को कर्म फल देने के लिये लाक्षागृह की सुरंग से निकल जाना था। ब्राह्मण, साधु, महात्मा अभ्यागत आदि सब पूर्ण रूप से प्रसन्न करके विदा किये गये, सभी ने पांडवों को शुभाशीर्वाद दिया और धन्य २ कहते हुए यथास्थान चले गये।

यह सब होते हवाते सन्ध्या हो गई। वह केवट-स्त्री अपने पांचों पुत्रों के संग दूर से आई थी, सन्ध्या हो जाने के कारण वह पुत्रों सहित उसी लाक्षागृह के एक ओर चौक में पड़ रही कि प्रातःकाल चलूंगी। उधर पांडवों ने माता सहित भोजन समाप्त किया और जब एक घड़ी रात्रि व्यतीत हुई तो वे सब इकट्ठे होकर अपना कार्य समाप्त कर यात्रा करने का विचार करने लगे। कुन्ती ने वैसा ही करने की आज्ञा दी। युधिष्ठिर ने तो चुपचाप चले ही जानेकी राय दी सब कुछ जान लेने पर भी वे दुष्ट पुरोचन को मारने के पक्ष-पाती न थे उनकी धर्मनिष्ठा यहां से सिद्ध होती है। भीम बड़े ही क्रोधी थे वे दस हजार हस्थी का बल रखते थे वे तो किसी प्रकार दबने वाले न थे परतु वाह रे भ्रातृभक्ति! बड़े भाई की आज्ञा को पिता की आज्ञा समझते थे। वे सब एक दूसरे के लिये बड़ा ही सम्मान और उचित व्यवहार पद के अनुसार ही करते थे।

अन्दर ही अन्दर भीम अपना क्रोध दबा कर बोले-"एक दुष्ट सामने ही हमारा विनाश करने के लिये उपस्थित है और वह इसी काम के लिये आया हुआ है तथा एक न एक दिन हमें भस्म कर देने का बीड़ा उठाये बैठा है पुनः उसे जीता ही छोड़ कर चले जाना कहां का न्याय है! ऐसे पापी को अवश्य ही कर्म का दण्ड दे देना उचित है। भीम की बात का अर्जुन नकुल तथा सहदेव ने भी समर्थन किया युधिष्ठिर ने भी वैसी ही आज्ञा दी तो भीम स्वयं यह कार्य करने के लिये तैयार हो गये।

आवश्यक सामान की गठरियें अर्जुन ने बांधी और सब ने आधी रात के समय एक २ गठरी और अपने अस्त्र शस्त्र लेकर चलने की तैयारी की और जो दूत विदुरजी के पास से आया था उसे कुशल समाचार देकर विदा किया। इसके बाद कुन्ती, युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव सुरंग में जा खड़े हुये और भीमसेन ने उस लाक्षागृह में आग लगा दी। जब चारों ओर से आग ने पकड़ लिया तो वे सुरंग में चल दिये और सबको लेकर जल्दी २ बाहर निकलने लगे।

सारा महल शीघ्र जल उठने वाला ही बनाकर तैयार किया गया था। दुष्ट पुरोचन ने इसमें आग लगाई थी। उधर वह पांडवों के नाश का स्वप्न देख रहा था उधर महल धकाधक जल उठा, आग बारूद तक पहुंची तो बड़ा धड़ाका हुआ और महल के टुकड़े २ होकर उड़ने लगे। भयंकर अग्निकांड मचने से सारे वरणावत् में हाहाकार मच गया।

वहां की प्रजा और ऋषि मुनि दौड़े आये परन्तु लाक्षागृह जल कर भस्म हो चुका था। हाहाकार मच गया सबको कौरवों पर सन्देह हो गया और पांडवों के लिये वे छाती पीट २ कर रोने और कौरवों को गालियां देने लगे। सबको यह निश्चय हो गया कि पांडवों को भस्म कर दिया गया है क्योंकि देखने पर वहां पांच पुत्रों सहित रह जाने वाली स्त्री की जली हड्डियों का कलबूत दिखाई पड़ता था।

एक भाग में पुरोचन की जली ढेरी भी पड़ी थी जिस पर सबने धिक्कार बरसाई। होते २ यह समाचार हस्तिनापुर पहुंचा तो वहां शोक से काली रात पड़ गई। प्रजा तक के घर दिये न जले, जिधर देखो उधर ही रोने पीटने की आवाजें आ रहीं हैं पांडवों की सर्व प्रियता का पता शत्रुओं तक को भी लग गया परन्तु वे मन ही मन प्रसन्न होकर अपने सुखमय भविष्य का स्वप्न देख रहे थे। कितने ही दिन हस्तिनापुर में शोक की घटा छाई रही जब कुछ शान्ति हुई तो महात्मा विदुर ने सबको धैर्य देने का प्रयत्न किया परन्तु सारी बात मन में ही रक्खी।

उस सुरंग से निकल कर पांडव एक विकट बन में पहुंचे और बहुत दूर निकल जाने पर गंगा के किनारे जाकर रुक गये क्योंकि पार हुए विना आगे बढ़ना कठिन था। वे खड़े ही थे कि एक नौका लेकर महात्मा विदुर का भेजा हुआ एक दूत पहुंचा। उसने उन्हें गंगा पार किया और कुशल समाचारादि लेकर हस्तिनापुर को वापिस लौट गया।

गंगा पार होकर पांडव बहुत दूर एक घोर बन में गये और वहां अपने रहने का कोई ठीक तथा गुप्त स्थान खोजने लगे। इधर उधर भटकते हुये और अपने भाग्य पर दुःख प्रकट करते वे एक ऐसे स्थान पर पहुंच गये जहां न तो खाने को फल और न पीने को जल मिलता था। भूख प्यास से व्याकुल होकर वे सब एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। थकावट भी इतनी हो गई थी कि सब बेसुध हो गये थे।

भीम भी कष्ट में थे परन्तु वे महाबली थे, हिम्मत हारने वाले न थे। वे माता तथा भाइयों का कष्ट न सहन कर सके और पानी आदि की तलाश को दौड़े। एक छप्पर में पानी मिला, भीम ने पेट भर जल पिया और फिर सबके लिये लाये। दो चार फल भी मिले पर आप न खाकर उनके लिये लाये। पास आकर उन्होंने सब को जल पान कराया और हिम्मत बधाकर कुछ आराम करने के बाद सबको लेकर आगे चल पड़े। पांडव जैसे महाबली राजपुत्र और राजरानी कुन्ती पर भी यह विपत्ति पड़ी इससे स्पष्ट ही है कि भाग्य का भोग देवता भी भोगते आये हैं।

घटोत्कच जन्म

बनों में भटकते २ पांडव संध्या हो जाने के कारण वृक्ष के नीचे एक स्थान पर बैठ गये। सभी थके हुये थे इससे उन्हें निद्रा आ गई, परन्तु भीमसेन न सोये। वे पहरा देने के लिये जागते रहे। वे नागराज वासुकि के उपदेश को कभी नहीं भूले कि "भाइयों की रक्षा करना" वे सर्वदा सबको आराम पहुंचाने की चेष्टा किया करते थे।

भीमसेन तो पहरा दे रहे थे अन्य सब सो गये, जहां ये सो रहे थे उसके पास ही एक वृक्ष पर हिडिम्ब नाम का बड़ा ही विकराल राक्षस रहता था, जो मनुष्य मांस को खाने वाला था। उसके कारण बड़ी २ दूर तक मनुष्यों की बस्ती न थी। राक्षस की एक मायाविनी और बड़ी ही भयंकर बहन हिडिम्बा थी जो उसी के साथ रहती थी। राक्षस ने बहन से कहा "आज तो अपने ही आप ६ मनुष्यों का भोजन आ गया है, जा, उन्हें मार डाल इतने में मैं भी आता हूं" हिडिम्बा पांचों को मारने गई। जब सामने पहुंची तो उसने महाबली भीमसेन को बैठे देखा। वह गई तो उन्हें मारने के लिये ही थी परन्तु तेजस्वी भीम को देखकर मोहित हो गई। उसे मारना तो भूल गई और वह सोलह वर्ष की सुन्दरी बनकर भीमसेन की आंखों के सामने गई हाथ जोड़ कर कहने लगी–"महावीर! मैं तुम्हारा बलशाली शरीर और तेजवान स्वरूप देखकर मोहित हो गई हूं। मैं हिडिम्ब नामक महाबली राक्षस की बहन हिडम्बा हूं, मुझ में अपार शक्ति है, मैं आप छहों को उठाकर आकाश मार्ग में उड़कर आप सबकी रक्षा अपने विकराल भाई से करूंगी क्या ही अच्छा हो यदि आप मुझे अपनी पत्नी बना लें। मैं आप सबको मार डालने के लिये भेजी गई हूं, मेरा भाई भी आ जायगा तो किसी को जीवित न छोड़ेगा। यदि जीवन चाहते हो तो मेरी बात मान लो।"

भीम अभी उत्तर भी न दे सके थे कि हिडिम्ब गरजता हुआ आ पहुंचा। उसने आते ही दहाड़ मारी और सोये हुये पांडवों

पर झपटा, परंतु भीम सावधान थे। उन्होंने हिडिम्बको पकड़ लिया और एक घूंसा जमाया, जिससे वह दूर जा गिरा। इधर पांडव आदि भी उठ बैठे। भीमसेन ने हिडिम्ब को उठाकर फिर चारों ओर घुमाया और इतनी जोर से जमीन पर पटका कि उसका दम निकल गया। यह देखकर हिडिम्बा डर के मारे कांपने और भीम से प्रार्थना करने लगी। कुन्ती ने सब हाल सुना तो उन्हें दया आ गई और उन्होंने वहीं उसे भीम की पत्नी बनने की आज्ञा दे दी। इसके बाद सब वहां से चल पड़े। इसी हिडिम्बा के पेट भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने जन्म लिया।

मायाविनी माता हिडिम्बा और महाबली पिता का पुत्र होने के कारण घटोत्कच बड़ा ही बलवान निकला। इसमें अद्भुत शक्ति उत्पन्न हुई, यह आकाश मार्ग में भी उड़ सकने और युद्ध करने की सामर्थ रखने वाला दिखाई देने लगा। इस घटोत्कच की वीरता का हाल आगे चलकर कहा जायगा।

द्रौपदी स्वयंवर

पांडव जब बहुत दिनों तक वन २ भटके तब उन्होंने हिडिम्बा तथा पुत्र घटोत्कच को एक वनमें ही रहने का आदेश दिया क्योंकि वे माता और पुत्र विकट वन में ही रह कर गुजरा कर सकते थे। उन्हें छोड़कर पांडव आगे किसी ग्राम में रहकर भिक्षा के सहारे अपना गुजारा करने के लिये बढ़े।

बहुत दूर निकल जाने के बाद अकस्मात् श्रीव्यासदेव से उनकी भेंट होगई। व्यासदेव पांडवों को इस अवस्था में देख

कर बड़े दुःखी हुए और उन्हें धैर्य देकर 'एकचक्रा' नामक स्थान में ले गये। वहां ले जाकर व्यासदेव ने उन्हें एक ब्राह्मण के घर में स्थान दिलाया और अपने आने तक वहां रहने का आदेश देकर चले गये। दादा व्यासदेव के जाने पर पांडव साधु रूप धारण कर वहीं रहने लगे। भिक्षा मांग २ कर वे पेट भरते थे। परंतु सब लोग उनके सदाचार आदि गुण देख-देख कर उनके ऊपर श्रद्धा रखने लगे।

'एकचक्रा' ग्राम में विपत्ति ही सामने पड़ी। जिस घर में पांडव रहते थे अचानक एक दिन उस घरका स्वामी, स्त्री तथा बालक रोने लग गये। इस समय कुन्ती और भीमसेन घर में थे, बाकी चारों भाई आज भिक्षा मांगने गये थे। कुन्ती ने ब्राह्मण परिवार का रुदन सुना तो भीम सहित उनके पास जाकर कारण पूछने लगी। ब्राह्मण ने कहा—"इस देश में" "बक" नामक एक महा बली राक्षस रहता है। उसे प्रतिदिन एक मनुष्य और भोजन की सामग्री देनी पड़ती है। आज मेरी बारी है, अतः आज मुझे अपना बलिदान देना है। हमारे रोने तथा दुखी होने का यही कारण है।

ब्राह्मण परिवार का विलाप देखकर कुन्ती की आंखों से आंसू निकल पड़े, भीम को क्रोध आ गया। वे मारे क्रोध के लाल होगये इस समय उनका क्रोध देखकर सब चुप होगये और उन्हें भय लगने लगा। भीमसेन ने कहा 'ब्राह्मणदेव! आप चिंता न करें, यह भोजन की सामग्री मुझे दीजिये, मैं आपके बदले उस राक्षस के पास जाऊंगा और सारे देशकी

रक्षा के लिये उस दुष्ट को यमपुर भेजकर प्रातःकाल आ जाऊंगा ।" यह सुनकर सब आश्चर्य करने लगे, क्योंकि वे नहीं जानते थे कि हमारे घर स्वयं महाबली पांडव बसे हैं । ब्राह्मण ने उन्हें रोकना चाहा पर कुन्ती ने कहा "जाओ पुत्र ! उस दुष्ट से प्रजा की रक्षा करो ।" ब्राह्मण अवाक् रह गया और भीम माता के चरण छूकर चल दिये ।

थोड़ी देर में चारों भाई आकर भीम को पूछने लगे, कुन्ती ने सारी कथा कह सुनाई । चारों भाई भीमसेन को अकेले गये सुनकर स्वयं जाने को तैयार हुए, पर कुंती ने कहा "पुत्रो ! भीम अकेला ही बहुत है, तुम सब ठहरो प्रातःकाल आ जायगा ।" माता की आज्ञा पाकर सब बैठ रहे पर उस रात राक्षस ने खाया किसी को नहीं, सब भाई चिंता में पड़ कर बैठे २ भीमसेन की राह देखने लगे ।

उधर भीमसेन "बक" के लिये भोजन लेकर उसी स्थान पर गये जो ब्राह्मण ने बताया था । वहां पहुंच कर उन्होंने उस राक्षस को न देखा तो एक स्थान पर बैठकर वही भोजन आप खाना शुरू कर दिया । कुछ ही देर में "बक" गरजता हुआ भीम के सामने आ गया, उन्हें खाते देखकर पहले तो बड़ा गरजा फिर झपट पड़ा । भीम भी खाते २ उठकर उसका वार बचा गये और दूसरी बार झपटा तो उन्होंने उसकी टांग पकड़ कर घुमाना शुरू कर दिया । थोड़ी देर घुमाकर एक वृक्ष के ऊपर पटक कर उसकी हड्डी पसली चूर-चूर कर डाली बात की बात में "बक" बड़ी जोर से चिल्लाता हुआ मर गया ।

भीम ने देखा "लोग इकट्ठे हो जायेंगे यह दुष्ट बहुत चिल्लाया है" वे तुरंत झूमते २ ब्राह्मण के घर जा पहुंचे।

भीम को देखते ही मारे प्रसन्नता के सब उठ खड़े हुए और कुन्ती के बाद सबने उन्हें गले से लगाया। ब्राह्मण दम्पति ने भीम को अनेकानेक आशीर्वाद दिये। एकचक्रा के निवासियों को राक्षस की चिल्लाहट से सन्देह हुआ था परंतु डर के मारे कोई गया नहीं। प्रातःकाल राक्षस की लाश देखी गई तो हलचल सी पड़ गई, पूछताछ होने लगी परंतु पांडवों ने अपने आपको प्रकट न होने दिया।

बक संहार के बाद से वहां के निवासी पांडवों को बड़ी श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखने लगे और उन्हें घर बैठे एक से एक बढ़कर भोजन सामग्री प्रतिदिन पहुंचने लगी। पांडव बड़े आनन्द से रहने लगे। एक दिन देशाटन करते हुए एक ब्राह्मण देवता वहां आ गये और स्थान २ की यात्रा का समाचार सुनाने लगे। उन्होंने राजा द्रुपद की पुत्री द्रोपदी के जन्म का वृत्तान्त कहते हुये बताया कि "इस समय द्रोपदी के समान स्वर्गीय देवी और महा सुन्दरी कन्या किसी की नहीं है अब उसका स्वयंबर होने वाला है। सर्व देश के राजा और राजकुमार उसको पाने की अभिलाषा रखते हैं परन्तु यह नारी रत्न उसी को प्राप्त होगा जो अस्त्र विद्या में सर्वश्रेष्ठ और महावीर होगा यही द्रुपद की प्रतिज्ञा है।

ब्राह्मण के मुख से द्रोपदी स्वयम्बर का समाचार सुनकर पांडव अपनी अवस्था को देख कर बड़े उदास हुए। वे ये स्वयम्बर देखने के लिए और द्रोपदी को अपने वीरत्व से प्राप्त

करने के लिये उत्साहित होकर ही क्या करते जब कि वे बन २ के भिखारी हो रहे हैं। माता कुन्ती को अपने महावीर पुत्रों के लिये यह समय भाग्य परीक्षा का ठीक जंचा उन्होंने पुत्रों के मन की अभिलाषा को समझ कर कहा "पुत्रो! हमने कोई महापाप नहीं किये हैं जो कौरवों से डर कर अपनी अवस्था को इस प्रकार गिरा बैठें। जो घोर पाप करने के लिये तैयार रहते वे इस स्वयंवर सभा में छाती निकाल २ कर पहुंचेंगे फिर तुम भी क्यों न जाओ! जिस समय दुष्टों की दुष्टता प्रकट होगी उस समय हमारा सभी संकट दूर हो जायगा और तुम्हारे वीरत्व, धर्मनिष्ठा, क्षमाशीलता आदि पर प्रजा-जन तथा गुरुजन प्रसन्न होकर राज्य का पूर्ण अधिकारी बनावेंगे। मेरी इच्छा है कि तुम भी पांचल देश में द्रोपदी का स्वयम्बर देखो और हो सके तो अपनी २ अद्भुत वीरता का परिचय देकर द्रोपदी को प्राप्त करो! मेरा हृदय साक्षी देता है कि गृह लक्ष्मी को यदि प्राप्त कर लोगे तो तुम्हारे सभी धन कष्ट दूर हो जायेंगे, राजा द्रुपद पुत्री के साथ अथाह धन भी देंगे और सहायता करेंगे।

पांचों भाई माता की आज्ञा पाते ही उत्साहित हो उठे और पांचाल देश की यात्रा करने के लिये तैयार हो गये वे गुरुजनों तथा वृद्धजनों की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझते थे अतः श्री व्यासदेव की आज्ञा बिना वहां नहीं जा सकते थे। अभी यह सब विचार हो ही रहे थे कि अकस्मात

त्रिकालज्ञ व्यासदेव वहां पहुंचे। पांडवों ने उठकर उनके चरण छुये व्यासदेव ने आशीर्वाद देते हुये बैठकर सब समाचार पूछे।

बातों ही बातों में पांडवों ने पांचल देश को जाने की आज्ञा मांगी, व्यासदेव जी ने प्रसन्नता पूर्वक वहां जाने की आज्ञा दी और इसमें उनका लाभ बताकर उन्हें पांचाल देश की ओर विदा करके यथा स्थान चले गये। पांडवों ने यात्रा की तैयारी की—एकचक्रा ग्राम निवासियों ने बड़ी मुश्किल से उन्हें विदा किया।

महारथी अर्जुन ने पांचाल देश के रास्ते ही में गन्धर्व-राज चित्ररथ पर विजय प्राप्त की और वह इनसे परास्त होकर इनका परम मित्र बन गया। यहां से विदा होकर पांडव पांचल देश में पहुंचे। वहां स्वयंवर की ऐसी तैयारी थी जिस का वर्णन करना कठिन है। सब देशों के राजा, महाराजा, राजकुमार और बड़े २ महाबली पुरुष द्रोपदी का स्वयम्बर देखने के लिये चले आ रहे थे। द्रुपद की राजधानी में ऐसी धूम-धाम थी कि देखते ही बनता था। राजधानी में पहुंचकर पांडव एक कुम्हार के घर में ठहरे और ब्राह्मणों की तरह वहां रहने लगे।

इसके बाद स्वयम्बर की सभा का दिन भी आ गया, सभा में अपनी २ शक्ति और पद के अनुसार सब विराज-होने लगे, देखते २ सभा बड़े-बड़े पराक्रमी राजा-महाराजाओं के शुभागमन से भर गई। जो स्थान जिसके लिये बनाया

था वे पदानुसार वहीं विराजमान हुये। राजाओं में राजे और धनाढ्यों में धनाढ्य, वीरों में वीर, साधुओं में साधु तथा ब्राह्मणों में ब्राह्मण मान पूर्वक बैठे। राजा द्रुपद की ओर से सबका यथोचित सम्मान होने लगा; बड़े २ गवैये गाने लगे, मंगलाचार आरम्भ हो गया, भांति २ के बाजे बजने लगे और बड़ा ही आनन्द का समा बंध गया।

राजा द्रुपद ने सभा मण्डप के मध्य भाग में एक ऐसा चक्र बनवा कर लगाया था जो एक बहुत ऊंचे खंभे के ऊपर लगा था। यह चक्र बड़े वेग से घूमता था। इस चक्र-स्तम्भ के नीचे जल का एक कुण्ड बनाया गया था जिसके जल में इस चक्रदार मछली की शक्ल साफ दिखाई देती थी। यह चक्र अस्त्र विद्या की परीक्षा के लिये बनाया गया था राजा द्रुपद की प्रतिज्ञा थी कि "जो वीर नीचे जल में मछली की परछाईं देखकर घूमती हुई मछली की आंखों में तीर मारेगा वही द्रोपदी से विवाह करने का अधिकारी होगा और द्रोपदी उसी को अपना पति समझ कर वरमाल देगी।"

अस्त्रधारियों ने समझ लिया यह विलक्षण चक्र है इसे देखकर "मछली को वेधन करके द्रोपदी को पाना कठिन काम है।" जब समय उपस्थित हुआ तो महा सुन्दरी वर-माला हाथ में लिये अपनी सखियों सहित सभा में उपस्थित हुई जिसे देखकर बड़े २ राजा महाराजा मोहित हो गये और उसे प्राप्त करने के लिये अपनी २ वीरता दिखाने को उत्साहित हो उठे। राजा द्रुपद ने इस समय उठकर सभा में कहा "मान्यवरो! जो इस चक्र की मछली को वेधन

करेगा द्रोपदी उसी की होगा, अब आप लोग अपनी-अपनी कार्य्य-कुशलता दिखाने के लिये उठिये।"

यह सुनकर सभी उत्साहित हो उठे। एक २ करके सब महावीरों ने लक्षवेध करना आरम्भ किया परन्तु किसी से यह विकट निशाना न लग सका। जब बड़े २ अस्त्रधारियों से यह काम न हो तो छोटे २ राजे तथा राजकुमार चुपचाप अपने स्थान पर बैठे रहे, किसी की हिम्मत मत्स्यवेध करने की न पड़ी। जिन्होंने चेष्टा की थी वह भी लज्जित होकर बैठ गये और सभा में द्रोपदी को पाने की निराशा दिखाई देने लगी।

राजा द्रुपद को बड़ा कष्ट हुआ कि "ऐसे २ योद्धा तथा महावीर उपस्थित हुए और उनमें से एक भी योग्य न निकला क्या द्रोपदी कुंवारी ही रहेगी?" यह देखकर द्रुपद ने सभा में खड़े होकर फिर कहा "महानुभावों! क्या इस स्वयम्वर सभा में कोई अस्त्रधारी वीर ऐसा नहीं जो राजकुमारी को प्राप्त कर सके?" यह सुनकर कुन्ती पुत्र महावीर अर्जुन से न रहा गया। वे वीर क्षत्रियों की नाम हँसाई न सहन कर सके और उन्होंने पूज्य बड़े भाई युधिष्ठिर से लक्षवेध करने की आज्ञा मांगा। पांचों भाई ब्राह्मण के वेश में थे और ब्राह्मणों की टोली ही में बैठे हुए थे। युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दे दी और अर्जुन ब्राह्मणों की टोली से निकलकर उस चक्र स्तम्भ के पास आकर खड़े हो गये।

महा तेजस्वी अर्जुन को ब्राह्मण वेश में देख कर सभा भर की निगाह उधर गई। सबके सब आश्चर्य हो उनकी

ओर देखने लगे। अर्जुन ने राजा द्रुपद से कहा "आपकी प्रतिज्ञा है कि जो लक्षवेध करेगा वही राजकुमारी का वर होगा" सो मैं लक्षवेध करने के लिये उपस्थित हुआ हूं, आज्ञा हो तो अपना कौशल दिखाऊं, इसमें किसी को आपत्ति न होनी चाहिए।

अर्जुन की इस बात को सुनकर सभासद हंसने लगे। कुछ की कुछ बातें बना बना कर उस वीर को कोई २ मूर्ख समझ कर ऐसा करने से रोकने लगे पर अर्जुन वहीं खड़े रहे। इसी समय एक ब्राह्मण ने उठकर कहा "सभासदो! एक वीर अपनी शक्ति दिखाने के लिये खड़ा है और आप सब उसकी हंसी उड़ा रहे हैं, यह अनुचित है। बड़े २ महावीर इस सभा में उपस्थित हैं जिनके करने से कुछ नहीं हुआ अब यह देखकर एक सुयोग्य व्यक्ति सम्मुख खड़ा है तो उसे मौका देना चाहिये।"

ब्राह्मण की बात सुनकर सब चुप हो गये और राजा विराट ने ब्राह्मण वेशी अर्जुन को अपनी कार्य्य-कुशलता दिखाने की आज्ञा दे दी। जिस समय अर्जुन अपना ओढ़ना उतार हाथ में धनुषबाण लेकर उस चक्र-स्तम्भ के पास जाकर खड़े हुये उस समय उनका तेज पुन्जशरीर और मुख का प्रकाश देखकर द्रोपदी मोहित हो गई।

अर्जुन ने पहली बार में ही मछली की आंख में बाण मारा परन्तु क्षत्रियों ने एक ब्राह्मण को न जीतने के लिये उस लक्षवेध को ठीक न बताया और होहल्ला सा मचा दिया

अर्जुन ने फिर एक बाण ऐसा मारा कि मछली की आंख ही उसके बाण में बिंध कर नीचे गिर पड़ी। तीसरे बाण से अर्जुन ने उसके दो टुकड़े भी कर दिये। जब यह चमत्कार दिखाई पड़ा तो सब लज्जित हो गये और द्रोपदी ने तुरन्त ही अपनी वरमाला अर्जुन के गले में डाल दी। आनन्द मंगलाचार होने लग गया। यह देखकर कितने ही राजा मन ही मन लज्जित हुये। राजाओं ने मिलकर सलाह की कि "द्रोपदी को एक ब्राह्मण ने पाया है। उसे उसके बदले में धन देकर द्रोपदी को ले लिया जाय और यदि वह न दे तो जो उससे युद्ध करके द्रोपदी छीन लेगा वह उसी की होगी।"

विचार स्थिर करके राजाओं ने अर्जुन से कहा कि चाहे जितना धन, रत्न लेलो पर द्रोपदी को दे दो। अर्जुन ने उन्हें खूब फटकारा जिससे सब राजा क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिये तैयार हो गये। अर्जुन के हाथ में उस समय धनुष बाण मौजूद था, वहावीर इन धमकियों से कब डरने वाला था? अर्जुन ने अकेले ही उन सब राजाओं को मार भगाया और द्रोपदी की रक्षा की। अर्जुन की यह वीरता देखकर द्रुपद समझ गये कि "यह कोई देवता है और महापराक्रमी है जिन्होंने इतने बड़े २ वीरों को अकेले ही परास्त कर दिया है" वे बड़े ही प्रसन्न हुये और अर्जुन को सन्मान पूर्वक लाने और उनका परिचय जानने के लिये अपने महाबली पुत्र द्रोपदी के भाई "धृष्टद्युम्न" को अर्जुन के पीछे भेजा।

अर्जुन सब राजाओं को परास्त कर द्रोपदी को संग

लिये सभा मण्डप से बाहर अपने भाइयों सहित किस ओर चल दिये उस समय के युद्ध का धांगड़ में कोई जान न सका। वे ब्राह्मणों की अगणित टोलियों में शामिल होकर आशीर्वाद प्राप्त करते हुये उसी कुम्हार के घर में गये जहां उतरे हुये थे। इनके पीछे गुप्त रूप से धृष्टद्युम्न लगा हुआ था जो कुम्हार के घर के बाहर चुपचाप छिपकर खड़ा रहा और सब तरह देखभाल करने लगा। पांडव जब कुम्हार के घर में पहुंचे तो किवाड़ बन्द थे और कुन्ती देवी अन्दर बैठी पुत्रों की राह देख रही थी क्योंकि वे प्रातःकाल के गये हुये लौटे न थे। वे तरह २ की चिन्ता कर रही थीं कि इतने में पांडवों ने किवाड़ खटखटाये। कुन्ती उत्साह से उठकर पूछने लगी कौन है? बाहर से पांडवों ने कहा "माता! और एक अमूल्य वस्तु प्राप्त करके आये हैं।" कुन्ती ने प्रसन्नता में बिना कुछ विचारे ही कह डाला कि "वाह वाह, तब तो तुम्हीं पांचों बांट लो, वह वस्तु तुम पांचों भोगो यह कहते हुये उन्होंने किवाड़ खोल दिये।

जब पांचों पुत्रों के संग खड़ी एक राजकन्या लक्ष्मी स्वरूपिणी द्रोपदी को देखा तो वे दांतों तले उँगली दबाकर अपने कहे शब्दों पर पश्चाताप करने लगीं। इधर पांचों पांडव भी चुपचाप खड़े विचारने लगे कि "माता की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है उन्हों ने अर्जुन की स्त्री को पांचों की भोग वस्तु कह डाला है यह तो बड़ी मुश्किल हुई।"

अन्त में सब बैठ गये कुन्ती ने द्रोपदी को बड़े प्यार

से अपने समीप बैठाकर उसका सर चूमा और स्वयम्बर की सारी कथा सुनाने के लिये पुत्रों से कहा। पांडवों ने सारा वृत्तांत कहा, जिसे सुनकर कुन्ती बड़ी ही प्रसन्न हुई और उन्होंने पुत्रों को आशीर्वाद देते हुये कहा 'पुत्रो ! मेरे मुंह से जो वाक्य निकल चुका है इसका कारण मेरी समझ में नहीं आया अवश्य ही यह भगवान की लीला है। मेरा वचन मिथ्या होना भी न चाहिये और तुम सब भी मेरी आज्ञा टाल नहीं सकते। अब जिस प्रकार हो इसे तुम पांचों अपनी स्त्री बनाओ।"

पांडव माता की इस आज्ञा पर मौन होकर विचार करने लगे, द्रोपदी और कुन्तीदेवी भी अपने २ मन में इस कठिन समस्या का विचार करने लगीं।

श्री कृष्ण से भेंट

भगवान् श्रीकृष्ण को कौन नहीं जानता और उनका प्रातः स्मरण नहीं करता ? पांडव श्रीकृष्ण की फूफी के पुत्र थे। द्रोपदी स्वयंवर में श्रीकृष्ण को यह बात मालूम हो गई थी कि लक्षवेध करने वाला ब्राह्मण वेशी महावीर और उसके साथी, यह सब पांच हैं तो अवश्य ही यह सब लाक्षागृह से बचे हुये पांडव ही होंगे जिनके विनाश का समाचार सर्वत्र फैल चुका है।

युद्ध समाप्त होने और राजाओं के परास्त होकर भागने के बाद जब अर्जुन द्रोपदी को लेकर चल दिये तो श्रीकृष्ण भी अपनी शंका निवारण करने के लिये उनका पता लगाने

का विचार कर अपने बड़े भाई "बलराम जी" को संग लेकर पांडवों की खोज में चले। श्रीकृष्ण तथा बलराम उस समय खोज लगाकर कुम्हार के घर में पहुंचे जिस समय कुन्ती, द्रोपदी तथा पांचों पांडव गरदन नीची किये विचार कर रहे थे।

श्रीकृष्ण बलराम अन्दर गये और धृष्टद्युम्न कान लगाकर बाहर से सुनने लगा। कृष्णजी को देखते ही कुन्ती देवी एकाएक चौंक उठीं और दौड़ कर दोनों भाइयों को कंठ से लगाया। दोनों ने चरण छू कर आशीर्वाद लिये। कुन्ती ने अपने पुत्रों का परिचय श्रीकृष्ण बलराम को कराया। पांडवों ने नाम सुना था, उनके अलौकिक कार्यों का बखान सुना था, स्वयम्वर सभा में दूर से देखा था और अब साक्षात् दर्शन कर वे गद्गद् होकर प्रसन्न हो उठे और बारी २ से सबने भाई कृष्ण और बलराम को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किया और गले मिले। सब इकट्ठे होकर बैठे तो बाहर खड़े हुये धृष्टद्युम्न उनकी बातें सुनकर सब पांडवों को पहचान गये और प्रसन्न होते हुये राजा द्रुपद को समाचार देने चले गये।

सबने मिलकर परस्पर कुशलक्षेम पूछी। फिर श्रीकृष्ण ने कौरवों की बड़ी निन्दा करके उन सबको धैर्य और उपदेश दिया कि "सत्य की जय होती है। आप लोग अपने सत्य पर डटे रहेंगे तो संसार में आपकी कीर्ति अमर हो जायगी। दुष्टों का विनाश होगा और सत्य का प्रकाश होगा।"

श्रीकृष्ण जी ने इस समय जो उपदेश दिये थे उनका विस्तार करना इस तुच्छ लेखनी के लिये असम्भव है। केवल इतना ही स्थानाभाव में कहा जा सकता है कि "इस समय श्रीकृष्ण के उपदेश सुनकर पांडवों को अपना जन्म सार्थक जान पड़ने लगा। वे जान गये कि साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान् का हम तृणवत् भाइयों पर दयालु होना हमारे सौभाग्य की पहली निशानी है।" पांचों भाई श्रद्धा पूर्वक उनके चरणों पर गिर पड़े और उन्हीं की आज्ञानुसार सदैव कार्य करने की प्रतिज्ञा की जिससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण बलराम ने उन्हें उठाकर हृदय से लगाया और सब तरह से उनकी देखभाल करने का वचन देकर वे विदा हुए।

विवाह

जब यह समाचार राजा द्रुपद को मिला कि "द्रोपदी पांडों में महावीर अर्जुन की पत्नी बनेगी और पांडव जीवित हैं, तो वे बड़े ही प्रसन्न हुये और द्रोपदी के साथ ही साथ अपने भाग्य को सराहने लगे।" उन्होंने सवारियों का बड़ा ही उत्तम प्रबन्ध करके मन्त्री आदि तथा महाजनों को संग भेजकर उन्हें विवाह के लिये आने का समाचार भेजा।

इधर पांडव तथा कुन्ती यही विचार कर रहे थे कि अर्जुन ने द्रोपदी को प्राप्त किया है और विवाह उसी से होगा। अर्जुन कह रहे थे कि पहले बड़े भाई का विवाह होना चाहिये। जब माता की आज्ञा है तो "पहले पूज्य युधिष्ठिर जा उससे विवाह करलें, हम सब भी उसे पत्नी

समझेंगे।" सब में युधिष्ठिर ही बड़े थे और वही धर्म की मूर्ति तथा परम विचारशील थे। उन्होंने विचार पूर्वक यही कहा कि "द्रुपद के यहां चलकर ही पूर्ण विचार होगा, क्यों कि विवाह के समय बड़े २ ऋषि मुनि तथा वृद्धजन, गुरुजन आदि उपस्थित होंगे।" यही बात सबको मान्य हुई।

द्रुपद की ओर से जब बड़ी धूम-धाम से बुलावा आया तो सब सम्मान पूर्वक गये और द्रुपद से भेंट होने पर बड़ी ही प्रसन्नता का समा बंधा। महारानियों ने कुन्ती देवी का इतना सम्मान किया कि वे सभी दुःख भूलकर सुख स्वप्न देखने लगीं।

राजा द्रुपद ने उनके कष्टों पर खेद प्रकट करते हुए कौरवों की बड़ी निन्दा की और उन्हें उनका हक दिलाने के लिये प्रयत्न करने का वचन देकर धैर्य धारण की सलाह दी। इसके बाद भोजनादि से सम्मान किया और जब निवृत्त होकर बैठे तो विवाह की बात छिड़ी। द्रुपद ने अर्जुन से द्रोपदी का विवाह करने के लिये कहा। युधिष्ठिर ने कहा हम माता की आज्ञा पालन करेंगे, अतः द्रोपदी का विवाह हम पांचों के साथ होगा।

धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर राजा द्रुपद चौंक उठे और उन्होंने कहा "एक स्त्री के एक पति होने की मर्यादा है फिर पांच पति से एक कन्या का विवाह कैसे हो सकता है? यह कह कर वे बड़ी चिन्ता में पड़ गये। उस समय और लोग भी अति चिन्तित हुए।

जिस समय यह कठिन समस्या उत्पन्न थी उसी समय अकस्मात् श्री व्यासदेव का शुभागमन हो गया। महामुनि व्यासदेव को देखते ही सब उठ खड़े हुए और सर झुकाकर आशावाद प्राप्त करने लगे। पूजन की सामग्री मंगवाकर उनका पूजन किया गया जिससे वे बड़े ही प्रसन्न हुये।

द्रुपद ने द्रोपदी के विवाह विषयक अपनी चिन्ता का हाल व्यासदेव से कहा और मर्यादा की रक्षा का उपाय पूछा। श्री व्यासदेव ने कहा "कुन्तीदेवी की आज्ञा मिथ्या नहीं है यह कार्य देव इच्छा से ऐसा ही होना था। पुनर्जन्म में दोपदी एक ऋषि कन्या थीं, इसने योग्य पति पाने के लिये घोर तपस्या की थी। शिवशंकर ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और वर मांगने को कहा इसने "पतिदेहि" पांच बार कह डाला। शिवजी ने तथास्तु कह कर अन्त में कहा– पुत्री ! पर-जन्म में तुझे पांच योग्य पति मिलेंगे क्योंकि तूने पांच बार पति मांगा है। इसका विवाह पांचो से कर दीजिये आपकी कन्या सौभाग्यवती है और सब प्रकार से आपका मुख उज्ज्वल करेगी।

त्रिकाल ज्ञानी माहमुनि वेदव्यास के वचन असत्य नहीं हो सकते थे और वे सर्वमान्य थे। जब उन्हों ने आज्ञा देदी तो द्रुपद ने द्रोपदी का जन्म वृत्तांत जानकर बिना कुछ विचारे बड़ी धूमधाम से विवाह की तैयारी की। यथा समय पांचो भाइयो का विवाह द्रोपदी के संग हो गया।

कुन्ती देवी तथा पांचों पांडव बड़े ही सम्मान और राजसी ठाठ से पांचाल देश में रहने लगे और धीरे २ पांडवों की राज्य-प्राप्ति का उपाय सोचा जाने लगा।

राज्य प्राप्ति

"पांडव लाक्षागृह से जीते बच गये और उन्होंने द्रोपदी को प्राप्त किया" यह समाचार छिपा न रहा क्योंकि पांडवों ने विशेष रूप से अपने को छिपा रखने की चेष्टा नहीं की थी।

इस समाचार के प्राप्त होने से महावीर भीष्म, महात्मा विदुर तथा द्रोणाचार्य को बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। उधर दुर्योधन आदि की मित्र मण्डली को ऐसा नीचा देखना पड़ा कि उन्होंने दो दिन तक किसी को मुंह न दिखाया। महात्मा विदुर पांडवों के बच जाने का समाचार तो जानते थे परन्तु द्रोपदी को भी उन्हीं सत्यव्रतियों ने प्राप्त किया यह समाचार जब जाना तो भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य से मिलकर यह विचार स्थिर किया कि "पांडवों में विनाशकारी द्वेष किसी प्रकार मिटा दिया जाय जिस से कुलमर्याद बनी रहे और परस्पर का वैमनस्य न बढ़े।" इन सब बातों को तय कर वे सब धृतराष्ट्र के पास गये।

संयोगवश धृतराष्ट्र उस समय अकेले थे जिस समय महात्मा विदुर आदि वृद्धजन उनके पास गये थे। उन्होंने लाक्षागृह विषयक सारी बातों का वर्णन करते हुये धृतराष्ट्र कहा—महाराज! आपके पुत्रों ने सर्वधारण के सम्मुख

अपने जिस हीन चरित्र का परिचय दिया है, उसे आप से ही नहीं सारी प्रजा भी जान गई है। इस समय पांडवों ने कितने संकट उठाये हैं और सत्य बल से अब वे जिस प्रकार अपनी उन्नति करने के लिये अग्रसर होने का विचार कर रहे हैं—आज सारी प्रजा में इसी पर विचार हो रहा है। कौरवों और पांडवों का वैमनस्य विनाश का मूल और वंश नाश का कारण होगा। यदि अभी से इसका उपाय न होगा तो यह द्वेष अमंगल जनक होगा। आप न्याय पूर्वक आधा राज्य पांडवों को बुलाकर दे दें और उनको अपनी उन्नति का रास्ता स्वयं निश्चित करने दें, अब इसी में आप की बड़ाई है। इधर आपने ध्यान न दिया तो प्रजा भी खुले दिल से कौरवों के सर पर सारा दोष मढ़कर संसार में बदनाम करेगी आप यह विचार लीजिये। इसमें आपका मंगल है।"

विदुर जी परम नीतिज्ञ और ज्ञानवान थे वे न्याय चाहते थे और अन्याय की बात तो वे जहां देखते थे वहां एक क्षण के लिये भी नहीं ठहरते थे। धृतराष्ट्र यद्यपि अपने पुत्रों की बातों में आकर पांडवों को अपनी उन्नति के पथ में बाधक समझने लग गये थे तथापि वे इस समय वृद्धजनों की उचित नीति सुनकर जान गये थे कि "तनिक भी अन्याय की बात कही तो सभी हमारे विरुद्ध और पांडवों के पक्ष में हो जायेंगे।" उन्होंने कहा—सज्जनों! आप जो उचित समझते हैं मुझे भी वही मान्य है। कोई शुभ दिन देखकर पांडवों को लिवा लाइये और आधा राज्य देकर

उन्हें अपना राजधानी खांडवप्रस्थ में बुलाकर सुख पूर्वक राज्य भोगने की आज्ञा दीजिये। मेरे लिये कौरव और पाण्डव दोनों एक समान हैं।"

यह बात धृतराष्ट्र की मुंह देखी थी परन्तु थी ठीक और यही सब चाहते थे। भीष्म जी ने धृतराष्ट्र को इस न्याय के लिये धन्यवाद दिया और शुभ समय में पांचाल देश की यात्रा करने का विचार स्थिर करके वे विदा हुये।

सब बातें दुर्योधन तथा कर्ण छिपकर सुन चुके थे। महात्मा विदुर आदि के चले जाने पर दोनों ही धृतराष्ट्र के सम्मुख जाकर कहने लगे—"पांडव स्वयं लज्जा के मारे छिपते फिरते हैं और आप उन्हें आधा राज्य देने की आज्ञा दे रहे हैं। जान-बूझकर आधा राज्य बांट देना और अपनी उन्नति में बाधा डालना कहां का न्याय है? वे तो खुद निकले ही हुये हैं और अब राजा द्रुपद के यहां चैन उड़ा रहे हैं। उन्हें बुलाकर राज्य देना कहां की बुद्धिमानी है? क्या उन्होंने राज्य के लिये प्रस्ताव किया है जो आप ऐसा कर रहे हैं। वे इतने में ही प्रसन्न हैं और आप पेट भरे पर विशेष भोजन दे रहे हैं यह उचित नहीं है।"

दुर्योधन की यह बात सुनकर धृतराष्ट्र फिर उलट गये। वे बोले—"अब तो आज्ञा दे चुका हूं अब क्या उपाय हो सकता है जिससे सारा राज्य तुम्हीं भोगो?" इस पर दुर्योधन ने कहा—"पिताजी! अब धन के जोर से राजा द्रुपद और उनके महाबली पुत्र धृष्टद्युम्न को अपनी ओर मिलाना

चाहिये, कुन्ती और माद्री के पुत्रों में परस्पर वैर भाव उत्पन्न कराकर भीम और अर्जुन को मार डालना चाहिये। यदि वे जीते रहे तो हमें कभी भी सुख प्राप्त नहीं होगा। वहां नहो सके तो यहां बुलाकर गुप्त रूप से उनका अन्त कर दिया जा सकता है।

दुर्योधन की बात सुनकर कर्ण क्रोध से कहने लगे— "वीरों का धोखे से मारना कहां का न्याय है! क्या वे पांडव ही वीर हैं और हम सब कायर हैं जो धोखे से मारने जायें! मैं इस पक्ष में नहीं। उन्हें मारने के लिये रणभूमि है। रण में उन्हें ललकारो और मार डालो। एक बार धोखा कर चुके दो बार धोखे से मार चुके तथा अपने नाम को बट्टा लगा चुके क्या वे मूर्ख हैं जो अब तुम्हारे धोखे में आयें?"

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—"वीर कर्ण। तुमने वीरोचित बात कही। रणभूमि में पछाड़ना ही सर्वोत्तम उपाय है परन्तु मैं विदुर, भीष्म और द्रोणाचार्य की सम्मति लिये बिना तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकता हूं। इस विषय का निश्चय कल मैं स्वयं करके रहूंगा।" यह सुनकर दुर्योधन तथा कर्ण चुप हो गये और कुछ देर बाद उठकर चल दिये।

दूसरे दिन धृतराष्ट्र ने विदुर, भीष्म तथा द्रोण आदि को बुलाया और मन की बात छिपाते हुये कहा—महाजनों! आप लोग पांडवों को यहां बुला लायें परन्तु राज्य के बंटवारे के विषय में कौरव और पांडव आपस में निवट लेंगे।"

भीष्मपितामह ने धृतराष्ट्र के भावों को जान कर कहा–"आपने कल आधा राज्य बांट देना स्वीकार किया है और आज आप इस विषय को उन पर निर्भर रखते हैं जिससे परस्पर द्वेष बढ़ता जा रहा है। पांडव इस राज्य के सर्वथा अधिकारी हैं और वे सत्य पर खड़े हैं। यदि यह विषय पुत्रों का रक्त बहा कर ही तय होना है तो हम सब अन्याय के साथी नहीं। हमारे लिये दोनों बराबर हैं और अब जब ऐसा विषय हमारे सम्मुख उपस्थित होगा हम सत्य और न्याय का ही समर्थन करेंगे।

विदुरजी ने कहा–"जान पड़ता है दुर्योधनादि के बहकाने से आपका मत पलट गया है। यदि यह सत्य है तो अब कौरवों का भविष्य भगवान के ही हाथ में है। न्याय पूर्वक विचार करके आधा राज्य उन्हें तुरन्त ही देकर यदि यह क्लेश दूर न किया गया तो हम सब राज्य के किसी भी कार्य में भाग लेने के लिये तैयार नहीं क्योंकि हम अब इस द्वेष व्यवस्था को देखकर अमंगल के चिन्ह समझते हैं।"

द्रोणाचार्य ने भी–दोनों का समर्थन किया तो धृतराष्ट्र चिन्तित हुए। वह समझ गये कि "हमारी चालाकी अब काम न कर सकेगी क्योंकि पांडव सर्वप्रिय हो चुके हैं और हमारे पुत्र अपने नाम पर धब्बा लगा बैठे हैं।" धृतराष्ट्र ने अपनी कुशल बँटवारा कर देने में ही समझी और वैसा ही करना स्वीकार कर लिया।

पांडव बुलाये गये और वृद्धजनों ने एक राजसभा की जिसमें प्रजा भी सम्मिलित थी। सर्व सम्मति से आधा राज्य

निर्माण कराने की आज्ञा धृतराष्ट्र विदुर, भीष्म तथा द्रोण आदि ने दी। पांडवों ने बड़ी प्रसन्नता से बड़ों की आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा की। उसी दिन बड़े २ कारीगरों को बुलाकर खाण्डव प्रस्थ में राजधानी निर्माण की आज्ञा दी गई।

यह समाचार कैसे छिपा सकता था ? दूर दूर के देशों में इसकी चर्चा फैल गई। उधर खाण्डवप्रस्थ में सुन्दर महल, दरबार भवन, सभा भवन, तथा अन्य राजभवनों के अतिरिक्त सुन्दर २ बाजार तैयार हुए इधर प्रजा के चौथाई भाग ने वहीं बसने के लिये अपना कार व्यवहार हस्तिनापुर से उठा दिया। दूर दूर के देशों की प्रजा खांडवप्रस्थ में आकर बसने लगी। हस्तिनापुर का प्राचीन राज्य इस नवीन राज्य की प्रभुता के आगे फीका पड़ गया। पांचों भाई एक प्राण थे यहां पर केवल इतना कहा जा सकता है कि संसार में भ्रातृत्व का सच्चा उदाहरण पांडव ही थे !

धर्मराज युधिष्ठिर राज-सिंहासन पर विराजमान होते थे, सहदेव चंवर स्वयं डुलाते थे। दाहिने और बायें भीम तथा अर्जुन पिता तुल्य बड़े भाई के चरणों में अर्थात् सिंहासन के नीचे बैठते थे। उस समय कैसी शोभा दिखाई देती थी यह कहां तक बखान किया जा सकता है। पांडव सुख पूर्वक राज्य करने लगे। प्रजा ने किसी राज्य में ऐसा सुख नहीं देखा था, अतः प्रजा ऐसी प्रसन्न थी कि राज्य का विस्तार दिनों दिन बढ़ाने लगा और राज्य की उन्नति पूर्ण रूप से होने लगी जिसे देखकर दुर्योधनादि कुढ़ने लगे।

प्रतिज्ञा पालन

सौभाग्य से पांडवों की राज्य-सभा में देवर्षि नारद का आगमन हुआ। पांचों भाइयों ने उनका आदर-सत्कार बड़े ही भक्ति भाव से किया जिससे प्रसन्न होकर नारद मुनि ने उन्हें शुभाशीर्वाद दिया।

नारदजी संसार प्रसिद्ध विनोदी थे। कुछ समय बाद जब एकान्त समय पाया तो उन्होंने पांडवों से कुछ हँसते हुए कहा पुत्रों! तुम्हारे गृहस्थ की तो विचित्र लीला है। पांच भाइयों में एक ही स्त्री है। तुम अपने लिये कोई नियम बनालो, ऐसा ना हो स्त्री के लिये भाइयों में किसी प्रकार का द्वेष उत्पन्न हो जाय।" महामुनि नारद जी की बात ठीक ही थी अतः पाण्डवों ने वैसा ही करने की प्रतिज्ञा की, जिससे वे प्रसन्न होकर विदा हो गये।

नारद जी के जाने के बाद पांचों भाइयों ने एक सभा की उन्होंने उनकी उचित बात पर विचार करके यह नियम बनाया कि द्रोपदी एक दिन एक भाई की सेवा में रहे। जिस दिन जिसके महल में द्रोपदी जाय उस महल में कोई प्रवेश न करे। जो इस नियम के विरुद्ध कार्य करेगा उसे बारह वर्ष बनवास करना पड़ेगा।" यह नियम पांचों को मान्य हुआ और द्रोपदी को भी यह बात बता दी गई। उसी दिन से इस नियम का पालन होने लगा।

एक दिन अर्जुन सन्ध्या होने के बाद घूमते फिरते हुये अपने महल तक आये तो उनके सामने एक ब्राह्मण रोता

पीटता आकर खड़ा होगया और महावीर अर्जुन को न पहचानने के कारण कहने लगा—"पांडवों के राज्य में मैं दीन ब्राह्मण लुट गया। सुनता था कि पाडवों के राज्य में चोरी आदि कुकर्म न होंगे, परन्तु मेरी सम्पत्ति तथा मूल धन और गौओं को चोर चुराये लिये जा रहे हैं, यह कैसा अनर्थ है? मैं पांडवों के राज्य की निन्दा करूँगा।"

"पाण्डवों की निन्दा" का नाम सुनते ही अर्जुन ने हाथ जोड़ कर बड़ा ही दीन भाव धारण करके कहा—"पूज्य! आप शान्त हों, यह सम्पत्ति और गौयें आपकी नहीं मेरी अर्थात् पांडवों की हरण हुई हैं। अपकी सम्पत्ति सारा राज्य है। आप जितनी गौयें और जो धन आपका गया है वह राज्य से प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि यह शासकों की असावधानी से चोरी हुई है। राज्य में दुष्टता करने वालों को दण्ड देना और खबरदारी रखना मेरा कार्य है, मेरा नाम अर्जुन है। आज मैं वायु सेवन करने गया था इस बीच में चोरों ने यह अत्याचार किया है, मुझे क्षमा कीजिये।

जब ब्राह्मण देवता ने अर्जुन को पहचाना और ऐसे दीन तथा न्यायपूर्ण वचन सुने तो वे रोने के स्थान पर प्रसन्न हो उठे और एक समान्य प्रजा के सन्मुख भी पांडवों का यह नम्र व्यवहार देख कर उनको अपने कहे वचनों पर पश्चाताप हुआ। उन्होंने आशीर्वाद देते हुये कहा "महाबहु! वास्तव में न्यायपूर्ण राज्य है तो पांडवों ही का है। मैंने आप जैसे संसार प्रसिद्ध महावीर और राज्याधिकारी के मुख से जो

नम्र वचन इस समय सुने हैं तथा जो न्याययुक्त दृष्टि आपकी देखी है उससे मेरा सब क्लेश दूर हो गया। मैं अपनी ही सम्पत्ति चाहता हूं और उन दुष्टों को दण्ड भी दिलाना चाहता हूं। आप समर्थ हो इस कारण मेरी ही गौयें मुझे इस समय छीन कर दे दीजिये! इस समय आपका कर्त्तव्य है कि गौओं को रास्ते में ही से छुड़ाइये, दुष्टों को दण्ड दीजिये। यदि दुष्ट एक बार भी सफल मनोरथ हुए तो आपकी वीरता पर धब्बा लगता है।"

ब्राह्मण देवता की बात ठीक थी, अर्जुन ने भी विचारा और तुरन्त कहा—"देवता! कर्त्तव्य तो यही है कि मैं इसी समय दुष्टों का पीछा करूं। उसी समय मैं चला भी जाता यहां अब खड़ा तक बातें न बनाता, परन्तु मेरे पास शस्त्र नहीं हैं। अस्त्र-शस्त्र बड़े महल में हैं और धर्मराज युधिष्ठिर द्रोपदी सहित वहां उपस्थित हैं। अब यदि मैं उस महल में शस्त्र लेने के लिये प्रवेश करूंगा तो प्रतिज्ञानुसार मुझे बारह वर्ष वनवास भोगना पड़ेगा।

ब्राह्मण ने उत्तर में कहा—"यदि आप अपना कर्त्तव्य पालन न करेंगे तो तुम्हारी निन्दा होगी, यह विचार करलो।

अर्जुन, अब कर्त्तव्य से विमुख होना अनुचित समझने लगे। उन्होंने ब्राह्मण को आदर पूर्वक महल में छोड़कर धर्मराज युधिष्ठिर के महल में चुपचाप चले गये और अपने शस्त्र निकाल कर चुपचाप ही घोड़े पर सवार होकर उधर ही दौड़े जिधर चोर गौओं को ले गये थे और ब्राह्मण ने पता

दिया था। रात चांदनी थी प्रायः आधी रात होते २ उन्होंने चोरों को जा पकड़ा। अर्जुन अद्वितीय धनुर्धारी थे, उन्होंने बाण बरसा २ कर चोरों के हाथ के सब शस्त्र तोड़ डाले और केवल हाथ ऐसे जख्मी किये कि वे गिरे हुये शस्त्र भी उठाने योग्य न रहे। चोर चिल्ला उठे और अर्जुन के तेज के सन्मुख कांपने लगे। अर्जुन ने गौओं सहित उन्हें अपने आगे लगाया और खाण्डवप्रस्थ लौट आये।

ब्राह्मण ने हल्ला सा मचा दिया था, प्रजा इकट्ठी होकर अर्जुन के आने की राह देख रही थी। इसी समय प्रायः पचास चोरों को लिये गौओं सहित प्रातःकाल अर्जुन अकेले आ पहुंचे। प्रजा ने धन्य २ की पुकार की आशीर्वाद दिये। राज महलों के सन्मुख भी वही हाल था, युधिष्ठिर सहित चारों भाई भी एक स्थान पर इकट्ठे हुये स्मरण कर रहे थे, वे भी अर्जुन को आते देख बड़े प्रसन्न हुये। हृदय से लगाकर युधिष्ठिर ने आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण को बुलाकर उसी समय उसकी सम्पत्ति दी गई और कुछ धन राज्य-कोष से भी देकर उन्हें विदा किया गया।

सब कुछ हो चुकने पर अर्जुन ने युधिष्ठिर से बन गमन की आज्ञा मांगी। सबके सब सुनकर विस्मित हो उठे और कारण पूछने लगे। अर्जुन ने शस्त्र लाना और चुपचाप महल में प्रवेश करने का हाल कहा और प्रतिज्ञा पालन का कारण बताया। यह सुनकर सबके सब सोच में पड़ गये। अन्त में युधिष्ठिर ने विचार कर कहा—"अर्जुन! तुमने

महल में प्रवेश किया है पर हमारा सामना द्रोपदी सहित नहीं किया। गये भी हो तो प्रजा की रक्षा के लिये, इस कारण तुम निर्दोष हो बन जाने की कोई आवश्यकता नहीं, यह निन्दा की भी कोई बात नहीं है।"

इस समय सबने विचार करके अर्जुन को समझाया परन्तु "की हुई प्रतिज्ञा को पालन न करने से निन्दा होगी तथा धर्म-घात होगा" इसी पर दृढ़ रहने से सबको परास्त होना पड़ा और युधिष्ठिर को आज्ञा देनी पड़ी। बात लाचारी थी, पाण्डव अपनी मर्यादा को सदैव के लिये निष्कलंक रखना चाहते थे और प्रतिज्ञापूर्ति का महत्व दिखाना चाहते थे इससे अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहे। उन्होंने मोह ममता को प्रतिज्ञा के सामने त्यागकर अर्जुन को विदा किया। सब की राय थी प्रबन्ध से जायें, परन्तु महावीर अकेले ही बन वेश कर शस्त्र ले, सबसे मिले और प्रजा का आशीर्वाद लेते हुये बन की ओर चल दिये। खाण्डवप्रस्थ में उदासी छा गई।

अर्जुन के कई विवाह

बनवास के समय में प्रथम एक दिन गंगा में स्नान करते हुए अर्जुन को कौरव नामक सर्प की कन्या नागलोक में खींचकर ले गई और स्त्री का दिव्य रूप धारण कर अपना नाम "उलूपी" बता कर उसने कहा—वीरवर ! मैं आप पर मोहित होगई हूं इस कारण बात करने के लिये आपको यहां पर अपने माता-पिता के पास लाई हूं, क्षमा करिये।"

अर्जुन उसकी दीनता देखकर शान्त हो गये। उन्होंने

पहले संध्यावन्दन आदि नित्यकर्म किया। कौरव्यों ने उनका बहुत सम्मान किया और सब सामग्री उपस्थित कर दी थी। इससे निवृत्त होकर अर्जुन ने बातचीत की। उन्होंने कहा—"मैं बनवास कर रहा हूं इस समय के बीत जाने पर और द्रोपदी की सम्मति लेकर विवाह की बात करूंगा।

इस पर उलूपी अपना प्राण देनेको त्यार होगई। इससे लाचार होकर अर्जुन को विवाह करना ही पड़ा। विवाह के बाद बहुत दिन वे वहां रहे और फिर वे बंगाल देश को गये।

समुद्र तट पर मणिपुर नामक एक राजधानी थी। वहां अर्जुन पहुंच गये। नगर में घूमते २ राजमहल की ओर गये, दैवयोग से उन्होंने राजकन्या चित्रांगदा को देख पाया और उस पर मोहित होगये। वे उसी समय राजा के पास गये और अपना परिचय दिया, राजा बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उसने बड़े सम्मान से उन्हें रक्खा। समय पाकर अर्जुन ने राजा से अपनी पुत्री विवाह देने को कहा। राजा इस शर्त पर विवाह देने को तैयार हुआ कि चित्रांगदा का पुत्र हमारा उत्तराधिकारी होगा। हम उस पुत्र को ले लेंगे" क्योंकि हमारे घर कोई पुत्र नहीं, केवल एक ही कन्या यह चित्रांगदा है, हमारा वंश वही पुत्र चलावेगा।

अर्जुन ने राजा की शर्त मानली और चित्रांगदा से विवाह कर लिया। तीन वर्ष अर्जुन वहीं रहे, इनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम "बभ्रुवाहन" रक्खा गया। कुछ दिनके बाद अर्जुन पुत्र और स्त्रीको छोड़कर प्रभास तीर्थ की ओर गये।

प्रभास तीर्थ पर भगवान कृष्ण उपस्थित थे। अर्जुन का आगमन सुन श्रीकृष्ण उनसे मिले और उनका बड़ा ही सम्मान किया। यहां दोनों बड़े आराम से रहे और एक संग भ्रमण किया। निकट ही रैवत् पर्वत था जो रमणीक और देखने के योग्य था, श्रीकृष्ण और अर्जुन वहां गये। वहां से फिर निकट ही द्वारिकापुरी थी, दोनों सखा द्वारिका गये। द्वारिकापुरी में यादव प्रजा ने बड़े समारोह से अर्जुन का स्वागत किया। अर्जुन की वीरता और कृष्ण का बन्धुत्व यादवों ने सुना था परन्तु आज उन्होंने अर्जुन को आंखों से देख कर बड़ी ही प्रसन्नता प्रकट की जिससे अर्जुन को बड़ा हर्ष हुआ और वे आनन्द पूर्वक वहां रहे। इसी समय से श्रीकृष्ण और अर्जुन में पूर्ण स्नेह और संसार प्रसिद्ध प्रेम स्थापित हुआ। दोनों ही एक से एक बढ़ कर महावीर और शक्तिशाली थे, इस अद्‌भुत सम्मिलन से दोनों ही एक दूसरे पर मुग्ध होगये और इतना प्रेम हो गया कि एक दूसरे से घड़ी भर अलग रहना भी कठिन हो गया। इस सखा भाव को देखकर यदुवंशी फूले न समाये। यद्यपि श्रीकृष्ण महापुरुष के रूप में ईश्वरावतार थे, परन्तु अर्जुन भी देवेन्द्र के वर-पुत्र थे, इनकी अपार मैत्री देखकर यादवों को अपनी शक्ति का बड़ा गौरव हो गया।

इन दिनों में रैवत पर्वत पर द्वारिकावासियों का एक मेला होता था और यह मेला संसार में प्रसिद्ध था। बड़ी २ दूर की प्रजा इस मेले को देखने आती थी श्रीकृष्ण ही यदु-वंशियों के शिरमौर थे और यह मेला उन्हीं की इच्छा से प्रजा

को आनन्दित करने के लिये आरम्भ हुआ था, वही कर्त्ता थे। इस बार अर्जुन के आगमन से यह मेला बड़ी धूमधाम से किया गया और वह इस मेले में रहे। कितने ही दिन आनन्द मंगलाचार से रैवत पर बीत गये। एक दिन दोनों सखा घूम-कर पर्वत की शोभा देख रहे थे, लौटने के समय अपनी सखियों के झुण्ड में श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा आती हुई दिखाई दी रास्ते में सामना हो गया। अर्जुन सुभद्रा को देखकर मोहित हो गये और सुभद्रा इनको देखकर। यह भाव दोनों का श्रीकृष्ण ताड़ गये। उस समय सब अपने २ स्थान पर गये। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से सुभद्रा का परिचय पूछा, उन्होंने पूर्ण परिचय दिया और हँसते हुये अर्जुन के हृदय की बात प्रकट कर दी। अर्जुन अब अपना भाव छिपा न सके और उन्होंने अपने सखा से ही उससे विवाह करने की तदबीर पूछी।

उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—आज कल योग्य स्त्रियां स्वयंवर सभा में अपना पति चुन लेती हैं या जो महा पराक्रमी होता है वह बल पूर्वक इच्छित पत्नी को हर लाता है। तुम महावीर और सुभद्रा के योग्य वर हो परन्तु मैं नहीं कह सकता कि मेरे बन्धु गण उसको आप से विवाहना स्वीकार करें या न करें और यह भी पता नहीं कि स्वयम्बर में सुभद्रा किसको वरण करेगी। यदि वास्तव में तुम उससे विवाह करना चाहते हो तो उसे हर ले जाओ मुझे आपत्ति नहीं है। यदि बन्धु-गण इस पर रुष्ट होंगे तो तुम और मैं युद्ध कर बैठेंगे अपनी

वीरता दिखाकर सुभद्रा को प्राप्त कर लेना ! तुम मेरे प्रिय सखा हो मैं तुम्हारे काम में बाधा न दूंगा क्योंकि मैं तुम्हें उसके योग्य समझता हूं।

श्रीकृष्ण के यह वचन सुनकर अर्जुन बड़े प्रसन्न हुये और उन्होंने सुभद्रा को हर ले जाने का विचार प्रगट किया जिसे जान कर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हुये। मेला समाप्त होने पर जब सब यदुवंशी वहां से द्वारिका की ओर चले तो रास्ते में अर्जुन ने सुभद्रा को उठा कर अपने रथ पर बैठा लिया और ले चले। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम जी को तथा अन्य बन्धुगणों को बड़ा बुरा लगा और उन्होंने अर्जुन से युद्ध करके सुभद्रा को छुड़ाने का निश्चय करके पीछा करने की तैयारी की। इस समय श्रीकृष्ण ने सब को समझाया कि अर्जुन से बढ़ कर सुभद्रा के लिये वर नहीं मिल सकता है, उसने अपनी वीरता के भरोसे ही यह कार्य किया है, हमारे में हरण की प्रथा भी है। अर्जुन से यह रिश्तेदारी हमारा कल्याण करेगी क्योंकि महावीर अर्जुन जैसा योद्धा हमारा सहायक हुआ। आप लोग शान्त होकर उनको लौटा लायें और प्रसन्नता से विवाह करके परस्पर बन्धुत्व स्थापित करें।

श्रीकृष्ण की सलाह सब को माननीय थी अतः सब शान्त हो गये और अर्जुन को मान पूर्वक लौटा लाये। द्वारिका में सुभद्रा तथा अर्जुन का विवाह बड़े समारोह से हुआ। विवाह के कुछ दिन बाद अर्जुन पुष्कर तीर्थ में गये और फिर अपना समय पूर्ण हुआ देखकर वे सुभद्रा सहित

खाण्डवप्रस्थ पहुंचे। बारह वर्ष के बाद अर्जुन को देखने के लिये प्रजा हर्षित हो उठी थी बड़े समारोह से स्वागत किया गया।

खाण्डवप्रस्थ में सुभद्रा के गर्भ से वीर बालक अभिमन्यु का जन्म हुआ। द्रोपदी के भी क्रमशः पांच पुत्र हुये जिनका नाम प्रतिविन्ध्य, सूतष्ठोम, श्रुतकर्म, शतानीक और श्रुताशन रक्खा गया। राज्य की उन्नति दिनों दिन होने लगी और खांडवप्रस्थ की प्रजा बड़े आनन्द से रहने लगी।

अर्जुन को अस्त्र प्राप्ति

जिस समय अर्जुन खांडवप्रस्थ आगये थे श्रीकृष्ण भी उसके कुछ ही दिन बाद मिलने के लिये आ गये। उनके सम्मानार्थ भी पांडवों ने कुछ उठा न रक्खा। श्रीकृष्ण इतने प्रसन्न हुये कि वे विशेष कर वहीं रहने लग गये।

एक दिन दोनों सखा यमुना तट पर टहल रहे थे इसी समय ब्राह्मण के रूप में अग्निदेव उनके सामने आये और कहने लगे—मैं भूखा हूं मेरी भूख मिटाने के लिये यह खांडव बन पर्याप्त होगा क्योंकि इसमें बड़े २ भारी जीव हैं। मैं इस बन को जला कर उन जीवों को भून लेना चाहता हूं परन्तु इस बन में देवराज इन्द्र का मित्र तक्षक रहता है। यदि मैं आग लगाऊंगा तो इन्द्र वर्षा करके अपने मित्र की रक्षा करेंगे। हे अर्जुन! आप मेरी सहायता करो जिससे मैं अपना पेट भरूँ।

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—देव! मेरे पास ऐसे अस्त्र

नहीं हैं कि मैं इन्द्र देव को लाचार कर सकूं। यदि आप ऐसे अस्त्र आदि मुझे लादें तो मैं आपकी इच्छा पूर्ण करदूं।

अग्निदेव प्रसन्न होकर वरुणदेव के पास दौड़े, वहां से "गांडीव धनुष" कभी न खाली होने वाला तरकस "अक्षय" और "कपिध्वज रथ" लाकर दिया। अर्जुन सहायता के लिये तैयार हो गये और अग्निदेव ने बनको जलाना आरम्भ किया।

श्रीकृष्ण और अर्जुन ने एक जीव को भी बन से बाहर भागने नहीं दिया। देवराज इन्द्र ने अपने मित्र को बचाने की बहुत चेष्टा की, मूसलाधार जल बर्षाया परन्तु उन्हें परास्त होना पड़ा। इन्द्रदेव यह वीरता देखकर बड़े प्रसन्न हुये और सम्मुख होकर प्रशंसा करने लगे, उन्होने अर्जुन से वर मांगने को कहा अर्जुन ने दिव्यास्त्र प्रदान करने की प्रार्थना की। इन्द्र ने कहा पुत्र अर्जुन! तेरे योग्य सर्वोत्तम अस्त्र भगवान शँकर के पास हैं उन्हीं की अराधना करो। इसके उपरांत आशीर्वाद देकर देवेन्द्र अन्तर्ध्यान हुये।

खांडव बन दाह के समय अर्जुन ने कितनों को ही प्राणदान देकर बचाया था। जिस में उल्लेखनीय रक्षा भयासुर अर्थात् मयदानव की थी। मयदानव ने अपनी प्राणरक्षा के बदले में अर्जुन श्रीकृष्ण की कुछ सेवा करना चाही। वह बड़ा पराक्रमी और दानव-वंश का विश्वकर्मा था। शिल्पकला का वह अद्वितीय कर्त्ता था, उसने हाथ जोड़ कर अर्जुन से कुछ सेवा कराने के लिये कहा। अर्जुन ने अपने बदले में अपने प्रिय सखा श्रीकृष्ण का कार्य करने को कहा। मयदानव

ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की तो उन्होंने उसे यह आज्ञा दी कि "खांडवप्रस्थ के पास ही कहीं एक ऐसा भवन निर्माण करो जो आज तक न बना हो और न आगे बन सके। यह भवन पांडवों के सभा भवन के नाम से संसार में प्रख्यात होजाये।"

मयासुर ने श्रीकृष्ण की आज्ञा पा कर वैसा करने के लिये विदा मांगी और चला गया। इसके बाद दोनों सखा राजधानी में गये और वहां जाकर सारी कथा धर्मराज युधिष्ठिर से कही। वे बड़े प्रसन्न हुये। कुछ दिनके बाद मय-दानव अपना सब सामान दानवों से उठवा कर लाया और उसने सभा भवन निर्माण करने की आज्ञा मांगी शुभ मुहूर्त में उसे कार्य पर लगाया गया और वह भवन निर्माण में लगा। प्रायः चौदह महीने बाद उसने भवन तैयार होने की सूचना दी। पांडवों ने बड़े समारोह के साथ इस अद्वितीय भवन में प्रवेश करने का दिन ठहराया और बान्धव तथा इष्ट मित्रों को निमंत्रित किया। दुर्योधनादि भी इस भवन को देखने आये। यह गृह प्रवेश बड़ी धूमधाम से हुआ। इसे जो देखता था वह आश्चर्य करता था, इसकी इतनी धूम-मची कि सब देशों की प्रजा इसे देखने आई, अनेक राजा महाराजा आये, बड़े बड़े महात्मा और ऋषिमुनि भी आये और बड़ी प्रशंसा हुई। कौरव इस गुप्त विश्वकर्मा का अद्भुत कौशल देख २ कर जलने लगे परन्तु उन्होंने पता न पाया कि यह किस प्रकार बना।

सभा-पर्व

जरासिन्ध वध

मयदानव के बनाये भवन में प्रवेश करने के बाद पांडवों ने राज्य की उन्नति पर विचार किया और बड़े उत्साह से राज्य की उन्नति करने लगे। एक बार सहसा देवर्षि नारद का आगमन हुआ। पांडवों ने उनका देवतुल्य सम्मान किया जिससे प्रसन्न होकर युधिष्ठिर को भारत का चक्रवर्ती राजा बनने की अनुमति दी और 'राजसूय यज्ञ" करने की सलाह देकर चले गये।

धर्मराज युधिष्ठिर की इच्छा भी छत्रपति बनने की हुई परन्तु चक्रवर्ती बनना सामान्य कार्य न था। चक्रवर्ती वही हो सकता है और वही राजसूय यज्ञ कर सकता है जो सब के ऊपर, सब राजाओं से कर लेने वाला और सबसे बलवान हो, दिग्विजयी ही सम्राट् होता है और इधर अभी पांडवों की राजधानी ही नवीन थी युधिष्ठिर ने भारत सम्राट् बनने की इच्छा मन ही मन में रक्खी, अन्य राजाओं तथा अपनी प्रजा को वश में करके उन्होंने राज्य का विस्तार आरम्भ किया।

सत्य की सर्वदा जय होती है। पांचों भाइयों के उद्योग से पांडवों का राज्य खांडवप्रस्थ सर्वोत्तम गिना जाने लगा और वे सर्वमान्य होने लगे, जब युधिष्ठिर ने देखा अब चेष्टा करने का समय है, तो उन्होंने दूत भेज कर द्वारिका से श्री कृष्ण को बुलाया क्योंकि वे बिना उनकी अनुमति कोई भी

खास कार्य नहीं करते थे। श्रीकृष्ण के आने पर धर्मराज ने राजसूय यज्ञ करने की पूछी तो श्रीकृष्ण ने विचार कर कहा—"धर्ममूर्ति ! आपने सर्वमान्य होने की चेष्टा की वह प्रशंसनीय है और आप हम सब सहित इतनी सामर्थ रखते हैं कि आप दिग्विजयी हों परन्तु इस समय आपके समान भारत-सम्राट बनने की इच्छा रखने वाला महाबली राजा जरासिन्ध भी है आप में और उनमें अन्तर है। आप सर्वप्रिय हैं और सत्यधर्म का बल भी रखते हैं परन्तु वह महाक्रूर और अत्याचारी है उसने राजाओं को कारागार में बन्द कर रक्खा है। वह महाबली है, हम सब सेना सहित उसका सामना रणभूमि में नहीं कर सकते यदि हम उस पर किसी प्रकार विजयी हों और उसके चंगुल से बन्दी राजाओं को मुक्त करें तो हमारी धाक जम जायगी और सब राजा भयभीत होकर हमारी आधीनता स्वीकार कर लेंगे। फिर आप राजसूय यज्ञ करके अपना मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं।

श्रीकृष्ण की युक्ति अकाट्य हुआ करती थी, यही उनके सर्वज्ञ होने का चमत्कार था। उनकी इसी अनन्त शक्ति को देखकर कोई पहचान न पाता था कि यह ईश्वर की कौनसी सम्पूर्ण शक्ति है? पांडवों के उपाय पूछने पर श्रीकृष्ण ने बताया कि जरासिन्ध के पास गुप्त रूप से पहुंच कर यदि द्वंद युद्ध के लिये ललकारा जाय और हम में से कोई उसे मारे तब अनायास ही यह मारा जाय। मेरे विचार में, मैं अर्जुन और भीमसेन तीनों जायं उसे युक्ति पूर्वक मार डालें

तो सारा कार्य सिद्ध हो सकता है। वह अधिक सेना होने से हमसे बलवान है क्योंकि मैं भी सेना बल से उसे परास्त न कर सका और बार-बार चढ़ाई करता रहता था, इसी से मैंने द्वारिका नगरी बसाई, द्वारिका में वह नहीं पहुंच सकता इसी से खार खाये बैठा है।

इस अन्तरंग सभा में पांचों भाई और छठे श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण की अकाट्य युक्ति को सुनकर सबके सब उत्साहित हो उठे, द्वंद-युद्ध में मारने की अभिलाषा भीमसेन ने प्रगट भी कर दी। युधिष्टिर ने भीम तथा अर्जुन को श्रीकृष्ण के संग जाने की आज्ञा दी और शुभ मुहूर्त देकर विदा किया।

श्रीकृष्ण, भीम तथा अर्जुन तीनों ने स्नातक ब्राह्मणों का रूप धारण कर मगध देश में प्रवेश किया। रात्रि एक मन्दिर में व्यतीत की, प्रातःकाल ही उन्होंने नगर में प्रवेश किया। इन तीनों ईश्वरीय शक्तियों के तेजोमयी मुख देख २ प्रजाजन आश्चर्य में पड़ गये, किसी को उनका परिचय पूछने तक की हिम्मत न पड़ी। वे एक दम राजमहल के द्वार तक चले गये। पहरियों ने ब्राह्मण जान कुछ न कहा, कितने ही कर्मचारी भयभीत होकर पीछे हट गये। तीनों धड़ा-धड़ अन्दर चले गये। जरासिन्ध उन्हें महा तेजस्वी ब्राह्मण के रूप में देख कर उठ खड़ा हुआ और तीनों को सम्मान पूर्वक बैठाकर उसने पूजन की सामग्री लाने के लिये आज्ञा दी। इसी समय श्रीकृष्ण ने कहा—मगधराज! हम तीनों ही ब्राह्मण नहीं हैं क्षत्री हैं, पूजन-सामग्री की आवश्यकता हम शत्रुओं के लिए नहीं है क्योंकि तुम हमारे शत्रु हो।

शत्रु सुनकर जरासिन्ध एक बार चौंक उठा और फिर आश्चर्यपूर्वक पूछने लगा—"मैं कैसे तुम्हारा शत्रु हूं मैं तो तुम्हें पहचानता ही नहीं। यदि मैं शत्रु हूं तो कैसे ? मैंने कौनसी शत्रता तुम्हारे साथ की है ?"

उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—"तुमने कितने ही राजाओं को कैद कर रक्खा है और तुम नरमेध यज्ञ करके शिवशंकर को प्रसन्न करना चाहते हो। यज्ञमें तुम उन राजाओं को बलिदान करोगे यह अत्याचार हमसे सहन नहीं हो सका, इस कारण हम तुम्हें मार डालने के लिये आये हैं। खामखां सेना संहार करने-कराने की आवश्यकता क्या है ? तुम हम तीनों में से जिससे चाहो युद्ध करो, हम तुम्हें भरी सभा में ललकारते हैं कि जिससे चाहे द्वन्द युद्ध कर सकते हो। मेरा नाम कृष्ण, यह भीम और यह अर्जुन है। अब बंदी राजाओं को छोड़ दो या युद्ध करो।"

जरासिन्ध यह सुनकर लाल होगया, उसने अपने सिंहासन से उठकर गरजते हुए कहा—"कृष्ण ! तुम कई बार मुझसे परास्त होकर भाग चुके हो तुमसे क्या लड़ूं ! अर्जुन अभी बच्चा है। हां, अपने मुकाबले में भीम को मैं चुनता हूं। आओ भीम ! या तो तुम नहीं या मैं नहीं। मैं बहुत दिनसे तुम्हारा बल सुनता था और तुम्हें अपना लोहा चखाना चाहता था। आओ आज निपटारा हो जाय।

भीमसेन बाल्यावस्था से ही क्रोधी थे, वह भला कब चुप रहते ? उन्होंने आंखें लाल २ करते हुए मूछों पर ताव देकर कहा—"जरासिन्ध ! सामने आजा अभी सारी शेखी मिट्टी

में मिलाये देता हूं।"

जरासिन्ध अब महा क्रोधित होकर उछल पड़ा, उसने तुरन्त ही सबको हट जाने की आज्ञा दी और आप भीमको ललकार कर महल के बाहर मैदान में निकल, राजसी ठाठ उतार कर ताल ठोककर तैयार हो गया। उधर अर्जुन और श्रीकृष्ण ने भी भीमसेन को उत्साहित कर उनके वस्त्र उतार अखाड़े में उतर जाने के लिये प्रशंसा करने लगे। ताल ठोक कर एक बार भीम ऐसे उछले और इस प्रकार गरजते हुए जरासिन्ध के सामने कूदे कि वह एक बार में ही-भय भीत हो गया।

अब देर क्या थी? दोनों ही प्रसिद्ध योद्धा भिड़ गये और एक दूसरे को तहस-नहस कर देने वाला युद्ध करने लगे। मगध में यह समाचार बिजली की तरह दौड़ गया। प्रजा भागी आई, राज्य के बड़े २ वीर, कर्मचारी, मंत्री, सेनापति आदि दौड़े आये और विनाशकारी युद्ध को देख २ कर तरह २ की शंकायें करने लगे।

यह घोर द्वन्द युद्ध लगातार १४ दिन तक होता रहा। अन्तिम दिन जरासिन्ध थक जाने से हताश होगया, इसी समय मौका देखकर श्रीकृष्ण ने भीम को कुछ इशारा किया। भीम ने उत्साहित होकर उसे थोड़ा और थकाया। जब वह हांफ गया तो भीम ने उसी समय उसे पृथ्वी पर पटक दिया और एक टांग में अपना टांग अड़ाकर बीचोबीच से चीर डाला। जरासिन्ध इतना चिल्लाया कि किसी से देखा न गया। जरासिन्ध को इस प्रकार मार भीम गरज उठे,

श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने दौड़कर उन्हें गले से लगा लिया और बड़ी प्रशंसा की

इस समय भीमसेन का क्रोधी रूप देखकर जरासिन्ध की प्रजा और राज्य-कर्मचारी वहांसे भाग निकले, रानियां चिल्लाने लगीं। भीमसेन को शान्त कर श्रीकृष्ण ने सबको आश्वासन दिया और वह अर्जुन और भीम दोनों को साथ लेकर कारागार में पहुंचे, वहां से उन्होंने सब राजाओं को निकाला और जरासिन्ध-बधका समाचार सुनाया। सब राजा हाथ बांधकर खड़े होगये और धन्य २ कहते हुए निकले। इन सब राजाओं समक्ष श्रीकृष्ण ने जरासिन्ध के पुत्र "सहदेव" को राजतिलक देकर प्रजा को सन्तुष्ट किया। इसके बाद जब प्रजा ने पाण्डवों की आधीनता स्वीकार कर ली तब श्रीकृष्ण ने वहां से प्रस्थान किया।

यहां से बड़े समारोह के साथ बिदा होकर जिस समय विजयी त्रिमूर्ति खाण्डवप्रस्थ पहुंची उस समय प्रजा ने अकथनीय स्वागत किया युधिष्ठिर ने तथा बन्धुगणों ने बड़ा ही उत्सव मनाया। इसी समय एक विराट सभा में ऋषि मुनिगणों ने आकर राजसूय-यज्ञ करने के लिये उत्साहित किया। श्रीकृष्ण ने इस विचार में विशेष भाग लिया और दिग्विजय की तैयारी करने की सलाह दी।

पाण्डवों का राजसूय-यज्ञ

राजसूय-यज्ञ करने के पहले दिग्विजय आवश्यक ही है, दिग्विजय अर्थात् सर्व प्रदेश के राजाओं को अधीनता स्वीकार

कराये बिना राजसूय-यज्ञ नहीं हो सकता, इस कारण विचार पूर्वक युधिष्ठिर ने चारों भाइयों को चारों दिशा में जाने और विजय प्राप्त करने के लिये आज्ञा दी।

चारों भाइयों के लिये सेना का संगठन किया गया और शुभ मुहूर्त में चारों भाई अपनी २ सेना लेकर बिदा हुए। उत्तर दिशा की ओर वीर अर्जुन, दक्षिण दिशा की ओर सहदेव, पूर्व दिशा की ओर भीम और पश्चिम की ओर नकुल ने प्रस्थान किया। चारों भाइयों को विदा कर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की तैयारी करनी शुरू कर दी।

चारों भाई कहीं तो मित्रता से और कहीं अपना बाहुबल दिखा दिखाकर राजाओं से कर बसूल कर अपनी आधीनता स्वीकार कराने लगे। उस समय श्रीकृष्ण तथा पांडवों का ही डंका बज रहा था। विशेष कर मित्र बनकर ही बहुत राजा आधीन हुए। जो अपने बल का अभिमान रखते थे उन्होंने परास्त होकर आधीनता स्वीकार की। मतलब यह कि चारों भाई विजय प्राप्त कर और बहुत धन, रत्न लेकर खाण्डवप्रस्थ में लौट आये जिससे युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने भाइयों के बाहुबल की बड़ी प्रशंसा की और फिर बड़े उत्साह से राजसूय-यज्ञ आरम्भ किया गया। इस यज्ञ के ब्रह्मा श्रीकृष्ण तथा व्यासदेव बनाये गये, याज्ञवल्क, धौम्य आदि महामुनि तथा अगणित ऋषि मुनिगण इस यज्ञ को सम्पूर्ण कराने आये और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

यज्ञ-वेदी का पूजनादि हो जाने पर ब्रह्मण भोजन आदि आवश्यक कार्य किये और साथही चारों दिशाओं में निमन्त्रण

भेजा गया। सभी राजा महाराजा आने शुरू होगये और उनका यथेष्ठ आदर सत्कार होने लगा। हस्थिनापुर से महात्मा विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य कृपाचार्य तथा दुर्योधन, कर्ण, शकुनी दुशासन आदि को सम्मान से बुलाया गया। खांडवप्रस्थ का यह राजसूय यज्ञ कितने समारोह से हुआ, इसका वर्णन करना कठिन है।

सब अपने बिराने आ गये, राज्य में उत्सवों का बाजार गरम हो गया, जिधर देखो आनन्द ही आनन्द दिखाई देने लगा। समय उपस्थित हुआ तो सब मिलकर बैठे और कार्य भार सबको दिया। श्रीकृष्ण ने अपनी इच्छानुसार ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य अपने हाथ में लिया उनके इस नम्र भाव को देख कर धन्य धन्य होने लगा। इसी तरह खाने पीने के प्रबन्ध पर दुशासन, ब्राह्मण सत्कार पर अश्वत्थामा, भीष्मपितामह तथा द्रोणाचर्य देख रेख पर, रत्नादिक जांच और दच्छिणा बांटने पर, दुर्योधन राजाओं की भेंट लेने नियुक्त हुये। अन्य राजगण भी कितने कामों पर नियुक्त हुए और कार्यारम्भ हुआ। राजसूय यज्ञ में आये हुये मित्रों का सत्कार करते हुए यह कार्य आनन्द पूर्वक निर्विघ्न होने लग गया।

शिशुपाल बध

किसी भी शुभ कार्य को समाप्त कर बड़ों के चरणों में प्रणाम करना या देव पूजन अब तक विद्यमान है। यज्ञ कार्य होने पर पहले किसी महापुरुषका पूजन करदें फिर अर्घ-प्रदान का समय आया। युधिष्ठिर ने इसकी सलाह भीष्म पितामह

से पूछी कि किसका पूजन होना चाहिये, इस समय सर्व माननीय कौन महा पुरुष है ? भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण को ही पूजनीय बताया, अतः उनका पूजन कर अर्घ दिया गया।

चदेरी का राजा शिशुपाल बड़ा ही क्रूर और पापी था, वह हर समय अपने बलके सन्मुख किसी को कुछ न समझता था। श्रीकृष्ण की पूजा होते देखकर वह जल उठा और बीच-सभा में खड़े होकर श्रीकृष्ण को खोटी खरी सुनाने लगा। भीष्म आदि को भी नीची ऊंची बातें सुनाने लगा, जिसको सुनकर भीमसेन क्रोधित होकर उसे मारने उठे परन्तु भीष्म ने पकड़ लिया।

बात बढ़ चली, परन्तु शिशुपाल चुप न हुआ। श्री कृष्ण शान्त भाव धारण किये बैठे थे और शिशुपाल को क्षमा किये जा रहे थे उन्होंने कहा—"यह मेरी फूफी का पुत्र है और बराबर मुझको गालियां दिया करता है। मैं फूफी के सन्मुख प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा करूंगा।" यह बहुत बार अपराध कर चुका है, सौ तक चुप रहूंगा। इसके उपरांत इसे इसकी करनी का फल दूंगा, मैं इसी से चुप बैठा हूं।

शिशुपाल और भी गरमा गया। उसने खुले मुंह गालियां देनी शुरू कर दीं और कृष्ण को ललकार हाथ में तलवार लेकर बीच मैदान में खड़ा हो गया। उसका यह ढीठपन देखकर श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम उठे, फिर अर्जुन, फिर नकुल, सहदेव सभी एक एक करके उठे, पर श्रीकृष्ण ने सब को बार बार रोक दिया। परन्तु जब उसके सौ अपराध पूरे

होगए और वे बड़ों की निन्दा और अधिक न सुन सके तो उन्होंने अपना प्रधान अस्त्र सुदर्शन चक्र घुमा कर शिशुपाल पर फेंका तो देखते ही देखते उसका सिर अलग जा गिरा। इस फुर्ती को देखकर सभासद दंग रह गये। मित्रों ने धन्य-वाद देना शुरू किया, वीरों ने बार बार श्रीकृष्ण की प्रशंसा की और शत्रु मन ही मन जलने लगे। शत्रु मन ही मन इस शत्रुता को दबा बैठे, क्योंकि वह उनका उस समय तक कुछ बिगाड़ न सके थे और आगे हिम्मत भी न पड़ती थी, ओंठ चबाकर रह गये। अन्त में युधिष्ठिर को सम्राट् पदसे विभूषित किया गया।

शिशुपाल बध के बाद यज्ञ कार्य समाप्त किया गया। यथोचित पूजन सत्कार कर आये हुए राजाओं और इष्ट मित्रों को विदा किया गया। श्रीकृष्ण भी द्वारिका को पधारे और राज्य कार्य सम्पादन होने लगा। सम्राट् युधिष्ठिर का यश सारे भारत में फैल गया और वे धर्म राज्य संचालन करने लगे।

घर में कलह

राजसूय यज्ञ समाप्त होने पर जब दुर्योधनादि एक दिन सभा मण्डप देखने गये तो भीम संग थे। मयदानव की कारीगरी देख २ कर सब चकित होगए यहां तक कि लोग धोखा खाने लगे। एक स्थान पर दरवाजा बना मालूम होता था। जब दुर्योधन और शकुनी उधर चले तो सर में ठोकर लग गई, क्योंकि वह दरवाजा नहीं दीवार थी। एक स्थान

पर जमीन मालूम होती थी, पर जब उन्होंने पैर रक्खा तो उसमें गिर पड़े, वह जल था। एक स्थान पर जल देखकर वे नहाने के लिये कपड़े उतारने लग गये और उसके पास गये तो जमीन नजर आई। इस तरह धोखा खाते जल देख-कर भीम हँस पड़े। भीम का हँसना दुर्योधन के लिये असह्य हो उठा, ऊपर से भौजाई द्रोपदी ने हँसी से कह दिया—"अन्धे पिता का पुत्र है, इसी से दिखाई नहीं देता।" द्रोपदी के इन वचनों ने कटे पर नमक छिड़क दिया।

दुर्योधन शर्मिन्दा होकर चुप रह गया, परन्तु मनही मन द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी। दुर्योधनने पांडवों की बढ़ती देख उनके विनाश का निश्चय कर डाला और इसी चिन्ता में डूब कर वह हस्तिनापुर चला गया। कुछ ही दिन में दुर्योधन की चिन्ता इतनी बढ़ी कि वह दुर्बल होने लग गया। धृतराष्ट्र ने जब यह सुना तो उन्होंने इसका कारण पूछा। दुर्योधन ने स्पष्ट ही कह दिया कि पिताजी! मैं पांडवों का यह वैभव इन आखों से नहीं देख सकता। यदि आप उनके विनाश होने की आज्ञा न देंगे तो मैं जहर खाकर मर जाऊंगा।

पुत्र की यह दशा देख धृतराष्ट्र ने कहा—"पुत्र! तेरी प्रसन्नता के लिये मैं सब कुछ कर सकता हूं, परन्तु पांडवों को इस समय तू किसी प्रकार भी नीचा नहीं दिखा सकता, वे दिग्विजयी हो चुके हैं यदि गुप्त रूप से तेरी इच्छा पूर्ण हो सकती है तो बता!" दुर्योधन पहले ही अपने मामा शकुनी से एक विनाशकारी युक्ति जान चुका था। उसने कहा—"पिताजी! मामा शकुनी के पास जुआ खेलने के अद्भुत पासे हैं।

पाण्डवों से जुआ खेलकर उनको परास्त किया जायगा, यह युक्ति सबसे बढ़िया है। मैं उनका राज्य जुआ खेलकर जीत लूंगा, तब ही मेरा मन ठण्डा होगा।

धृतराष्ट्र दुर्योधन की और उसके सलाहकारों की बात मान गये। उन्होंने एक सभा मंडप बनवाने की आज्ञा दे दी। दुर्योधन ने बड़ा ही सुन्दर मंडप तैयार कराया। धृतराष्ट्र ने बहाने से पांडवों को सभा मंडप देखने के लिये बुला भेजा, वे आ गये। कुछ दिन तक पांडव वहां परिवार सहित रहे और उनका सम्मान दुर्योधन ने मुंह देखा होने पर भी खूब किया, जिससे उन्हें कुछ शंका न हो और वे प्रसन्नता पूर्वक किसी समय दाव में लाये जा सकें।

द्रौपदी चीर--हरण

किसीका समय सर्वदा एक समान नहीं रहता, यह एक ईश्वरीय नियम है। पांडवों ने कुछ दिन खांडवप्रस्थ पर अटल राज्य किया, परन्तु ईश्वर को उनका यह सुख अपघोर दुःख और अपमानके रूप में परिणत करके समय को उलट-पुलट करना था।

एक दिन जब छोटेसे बड़े तक सम्मिलित होकर बैठे थे, दुर्योधन का इशारा पाकर मन बहलाने का प्रस्ताव उठाया। शकुनी ने कहा आओ जरा पासे फेंक कर ही दिल बहलाया जाय। दुर्योधन ने पासे बिछा दिये और युधिष्ठिर से खेलने को कहा। युधिष्ठिर ने कहा जुआ पाप का मूल है, इसे न खेलकर और किसी तरह मन बहलाया जाय, परन्तु उस समय सबने दुर्योधन का पक्ष लिया और युधिष्ठिर को उकसाया। पांडव इस अन्दरूनी विनाशकारी युक्ति को समझ न सके। युधिष्ठिर ने पासे खेलना

स्वीकार कर लिया और सामने बैठ गये। शकुनी ने अपने मायावी पासे फेंकने शुरू कर दिये। यह देखकर सब को कुछ विचार होने लगा।

वृद्धजनों ने मना भी किया और धृतराष्ट्र को समझाया, परन्तु धृतराष्ट्र ने यह कहकर टाल दिया कि "भाई भाई मन बहला रहे हैं खेलने दो!" होते होते दाव पर दाव लगने लगे और गरमा गरमी से काम होने लगा। युधिष्ठिर धीरे-धीरे अपना सारा राज्य ही हार गये, फिर एक-एक करके भाइयों तक को भी हार दिया और हारे ज्वारी की तरह मतिमन्द होकर अलग हट बैठे।

कौरव बड़ी प्रसन्नतामें थे, पांडव शोकातुर और वृद्धजन क्रोधित होकर धृतराष्ट्र के इस षड्यन्त्र को समझ कर निन्दा करने लगे, पर अब होता क्या? पाण्डव राजा थे, पर अब निर्धन होगये, दुष्टों की चाल चलगई। जब सब चुप हो बैठे तो शकुनीने कहा—युधिष्ठिरजी! एक दाव और खेलो और इस दाव पर द्रौपदी को लगाओगे तो तुम सब मुक्त कर दिये जाओगे। इस समय युधिष्ठिर की अक्ल सब कुछ हार जाने के कारण मारी गई थी। वे उसके लिये भी तैयार होगये, परन्तु उस सभा में बैठे हुए भीष्म, विदुर, द्रोण आदि को बड़ा बुरा लगा और वे दुर्योधन को मना करने पर कठोर वचन सुनकर उस सभा से उठ चले, परन्तु लोगों ने फिर बैठा लिया। महात्मा विदुर न सहन कर सके और चले गये।

युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भी हार दिया तो कौरव मारे प्रसन्नताके उछल पड़े और पांडवों को दास कह कर तथा अनेक अपमान सूचक शब्द कहकर बोली ताना मारने लगे। वे चुपचाप सिर

पर हाथ रक्खे अपने आपको धिक्कारने लग गये।

दुर्योधन ने उसी समय एक दूत को भेजा कि जाकर जीती हुई द्रौपदी को सभा में ले आओ। दूत गया और कुछ देर में आकर कहने लगा द्रौपदी एक वस्त्रा है, वह इस समय सभा में नहीं आती और वह अपने आपको हारी हुई नहीं समझती। इस पर कुपित होकर दुर्योधन ने दुष्ट दुःशासन को भेजा। वह द्रौपदी को बालों से पकड़ कर खींचता हुआ बीच सभा में ले आया।

द्रौपदी की यह दुरअवस्था देखकर सभी दुःखी हो उठे, परन्तु इस अन्याय के दरबार में किसी की न चली। पांडव दास बने बैठे थे, वे कुछ बोल ही न सकते थे। द्रौपदी ने आकर भरी सभा के सामने कहा धर्मराज युधिष्ठर अपने को हार कर मुझे दाव पर लगाने के अधिकारी नहीं थे, इससे मैं दासी कैसे हुई, इसका न्याय होना चाहिये। न्याय वालों ने न्याय किया पर दुर्योधन ने एक न सुनी और दुःशासन को आज्ञा दी कि द्रौपदी का वस्त्र उतार कर इसे नंगा कर दो, तब मेरे अपमान का बदला उतरेगा।

भीम अब तक शान्त थे, परन्तु अब शान्त न रह सके। वे दुर्योधन को मारने के लिये उठे, पर युधिष्ठर ने रोक दिया और कहा हम हारे हुए हैं और दास बन चुके हैं, हम कुछ नहीं कर सकते इस पर भीम शान्त हुए, पर उन्होंने उसी समय भरी सभा में प्रतिज्ञा की--दुष्ट दुःशासन ने जिन हाथों से द्रौपदीके बाल पकड़े हैं, मैं उन्हें तोड़ूंगा। यह सुनकर दुर्योधन और भी उन्हें चिढ़ाने के लिये दुःशासन से बोला--द्रौपदी को नंगी करके मेरी

जाँघ पर बैठा दो। इस कठिन और असह्य आज्ञा को सुनकर हाहाकार मच गया। भीम क्रोधित होकर दूसरी प्रतिज्ञा की कि जिस जाँघ पर दुर्योधन द्रौपदी को बैठाना चाहता है, मैं उसे तोड़ूंगा और इस की छाती फाड़ कर रक्त पिऊंगा।

भीष्म, द्रोण आदि यह अन्याय देखकर धिक्कारते हुए उठ गये। दुःशासन द्रौपदी का चीर खींचने लगा, द्रौपदी ने इस समय विवश होकर भगवान का स्मरण किया और अपनी लज्जा बचाने की प्रार्थना की। भक्त वत्सल भगवान ने अबला की विनती स्वीकार की। दुःशासन ज्यों ज्यों वस्त्र खींचता था, वह वस्त्र त्यों त्यों बढ़ता जाता था। वह लाचार हो गया और बहुत देर तक वस्त्र खींचता रहा, पर द्रौपदी को नग्न न कर सका। अन्त में हताश होकर उसने वस्त्र छोड़ दिया और द्रौपदी बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, चारों ओर से त्राहि त्राहि की पुकार हो उठी। पांडव नीची गरदन किये अपने भाग्य को कोसने लगे।

द्रौपदी के पतिव्रत धर्म का बल देखकर सब अवाक् हो गये। धृतराष्ट्र ने द्रौपदी के होश आने पर अपने पास बुला कर कहा—"सती द्रौपदी! तुम्हारे सत्यबल ने तुम्हारी तथा पांडवों की लज्जा रक्खी है, मैं तेरा यह धर्म बल देखकर प्रसन्न हूँ, वर मांग! द्रौपदी ने तुरन्त ही वर मांगा कि "पांडव दासत्व से मुक्त हों और उनका राज्य लौटा दिया जाय धृतराष्ट्र ने तथास्तु कहा और पांडवों को मुक्त कर दिया और राज्य भी लौटा देने की बात मानली। अन्त में धृतराष्ट्र ने-युधिष्ठर को निकट बुला कर शान्त किया और दुर्योधन को क्षमा करने को कहा। युधिष्ठर ने वैसा ही किया और द्रौपदी तथा भाइयों को लेकर चलने की

तैयारी करने लगे।

दुष्ट दुर्योधन यह देख कर कलपता हुआ पिता के पास पहुंचा और रोना गाना शुरू किया। धृतराष्ट्र फिर लाचार होकर उपाय पूछने लगे। फिर वही जूए का उपाय ठहरा, पांडव फिर बुलाये गये और जूआ खेलने को लाचार किये गये। अब की बार यह शर्त लगी कि "जो हारे अपने दल सहित बारह वर्ष बनवास करें और एक वर्ष अज्ञात बास करें। यदि अज्ञात-बास में पता लग गया और पहचाने गये तो बारह वर्ष तक फिर वनवास करना होगा।"

जुआ फिर हुआ और पांडव हार गये। प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हें राज्य त्याग कर बन गमन करना पड़ा। वे पांचों भाई द्रौपदी सहित वन गमन करने को तैयार हुए और सबसे मिलकर वे अपने भाग्य को कोसते हुए विदा हुए। जाने के समय कौरव दल ने उन्हें कुवाक्य कह २ कर बहुत ताने दिये, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन सब से बदला लेने की प्रतिज्ञा कर के वन की ओर पैर बढ़ाया।

पांडवों के इस वन गमन का दृश्य बड़ा ही दुःखदायक था, जिसे देखकर प्रजा तक ने आंसू बहा दिये, परन्तु कौरव अत्यन्त प्रसन्न हुए, जिनमें कर्ण आदि भी सम्मिलित हैं। हस्तिनापुर की प्रजा को बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया। प्रजाने दिल खोलकर कौरवों के साथ भीष्म धृतराष्ट्र, द्रोण, कर्ण आदि की निन्दा की और पांडवों को रोकने के लिए दौड़ी।

प्रजा को देखकर पांडव रुक गये। प्रजा ने सामने होकर कहा हम इस पाप पूर्ण राज्य में न रहेंगे, आप खांडवप्रस्थ चलिये!

हम सब आपके लिए लड़ मरेंगे।" युधिष्ठिर ने प्रजा को समझा बुझाकर शान्त किया। अपनी प्रतिज्ञानुसार बारह वर्ष व्यतीत करके आने की आशा दिखाकर प्रजा को रोते बिलखते छोड़ वन की ओर चले गये। प्रजा उदास होकर लौट आई, परन्तु ब्राह्मण नहीं लौटे, वे साथ ही गये।

पांडवों के वन गमन के बाद ईश्वरीय कोप प्रारम्भ होगया और हस्तिनापुर में तरह २ के अशकुन दिखाई देने लगे।

※ वन--पर्व ※

जहाँ से पांडव वन के लिये प्रस्थान करते हैं वहीं से वन पर्व आरम्भ होता है और कौरवों की पाप वासना फैलती है।

पांडवों के वनवास की खबर चारों ओर फैल गई, जिससे शत्रु तो प्रसन्न हुए बाकी सारे भारत में त्राहि २ की पुकार मच गई। पांडव महाबली थे। युधिष्ठिर भारत सम्राट ही थे। यदि दुष्टों के संग वे दुष्टता करने की इच्छा रखते अर्थात् उनके इस अन्दरूनी विष को जान कर "जैसे के संग तैसे" वाली कहावत चरितार्थ करते तो दुर्योधनादि को मार गिराते, उनका राज्य छीन लेते और करनी का प्रतिदान उसी समय देते, परन्तु वाहरे प्रतिज्ञा और धन्य है प्रतिज्ञा की पूर्ति! इसके परान्त सब उसे विशेष महाकार्य्य भाइयों का उचित व्यवहार ही नहीं, संसार के आगे एक सच्चा उदाहरण है, भ्रातृ प्रेम और योग्य सम्मान का जीता जागता चित्र है।

बड़े भाई के लिये हुए अनुचित और निन्दनीय कार्य के फल से, अपना सर्वस्व दे डालने पर भी चारों भाई तेरह वर्ष का वनवास स्वीकार करते हैं, बड़े भाई की प्रतिज्ञा के लिये और वे

चारों भाई दीन होकर बन २ भटकने के लिये चले हैं, जो दुर्योधनादिको खाक की ढेरी बना देनेकी सामर्थ रखते थे। इसका नाम भाई का सम्मान है पाण्डव आज के भाई न थे "जो बड़े भाई के कुवाक्य के सम्मुख जूता लेकर खड़े हो जाते हैं।" भाई की बात पर तेरह वर्ष के लिये अपने आपको भिखारियों के रूप में परणित कर दिया।

पाण्डवों के वनवास का समाचार द्वारिका में पहुंचा, तो श्रीकृष्ण वहाँ न थे। जब उन्हें समाचार मिला तो वे सुभद्रा को लेकर तुरन्त उनकी खोज में निकले। काम्यक वन में पाण्डवों से उनकी भेंट हुई।

श्रीकृष्ण को बड़ाही क्लेश हुआ। वे महा क्रोधित भी हो उठे, परन्तु पाण्डवों की प्रतिज्ञा के आगे वे लाचार होगये। अन्त में तेरह वर्ष बाद बदला लेने की प्रतिज्ञा उन्होंने पाण्डवों के आगे की,तब वे शान्त हुए। श्रीकृष्ण ने यहाँ तक कि पांडवों में द्रोपदी सहित जो प्रतिज्ञा जिसने की है, उसी के हाथ से पूरा कराऊंगा। जिस तरह द्रोपदी रोई है उसी तरह दुर्योधनादि की रानियाँ बाल खोले रोयेंगी।"

श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा पर और द्रोपदी बदला लेने की आशा में धैर्य पूर्ण हुए और उनसे विदा मांग कर प्रस्थान किया। इधर श्रीकृष्ण बड़े दुखित होकर सुभद्रा सहित द्वारिकाको लौटगये।

अर्जुन का अस्त्र लाभ

एक समय वन में पांचों भाई द्रोपदी सहित बैठे थे और यह विचार उपस्थित था कि "अन्य युद्ध में अवश्य भीम, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि पृथ्वी के प्रसिद्ध वीर हैं। हम पांच हैं तो उन्हें कैसे

परास्त किया जायगा ?" ऐसे ही चिन्ता के अवसर में श्रीवेदव्यास का शुभागमन हुआ। पाण्डवों के उचित सम्मान से प्रसन्न होकर महामुनि ने युधिष्ठिर को "श्रुतिस्मृति" विद्या सिखाई और कहा कि 'इससे शिव और इन्द्र प्रसन्न होंगे' इससे अर्जुन सदाशिव और देवराज दोनों को प्रसन्न कर दिव्यास्त्र प्राप्त कर सकेंगे।

युधिष्ठिरादि पाण्डवों ने श्रीव्यासदेव के चरण छूए, उन्होंने आशीर्वाद देकर प्रस्थान किया। पाण्डवों को बड़ा धैर्य हुआ और अर्जुन की दिव्यास्त्रों को पाने की इच्छा प्रबल हो उठी। यह देख कर धर्मराज ने उन्हें विद्या सिखा दी और शुभ मुहूर्त्त में महादेवकी तपश्चर्या करने के लिये विदा किया। धन्य २ वह सामर्थ्य थी और धन्य धैर्य था, जिसका गुणगान आज तक हो रहा है और होता रहेगा।

महावीर अर्जुन उत्साह पूर्वक शीघ्र ही कैलाश पर्वत की घाटी पर पहुंच गये। महा विकट रास्तों को पार कर जब वे कैलाश पर्वत पर चढ़ने लगे, तो उन्हें साधु वेषधारी इन्द्र मिले। इन्द्र ने उन्हें शस्त्रों सहित पर्वत पर चढ़ने से मना किया, पर उनकी दृढ़ता के आगे वे लाचार होकर प्रगट रूप में सामने होकर आशीर्वाद देने लगे। अन्त में इन्द्र ने वर मांगने को कहा। अर्जुन ने दिव्यास्त्र माँगे, इन्द्रदेव ने कहा--जब महादेवजी प्रसन्न होकर अस्त्र देंगे तो हम भी देंगे।

इन्द्रदेव अन्तर्ध्यान हुए और अर्जुन कैलाश पर्वत पर जाकर कठिन तपश्चर्या करने लगे। पाँचवें महीने में ही शिवजी प्रसन्न हो गये और उनके बलकी परीक्षा लेकर पाशुपत अस्त्र प्रयोग सहित प्रदान किया और मना कर दिया कि यह महास्त्र

बिना किसी जरूरी समय आये प्रयोग न करना।

शिवजी से अस्त्र प्राप्त करके अर्जुन चले ही थे कि इन्द्र-देव आ पहुंचे और उन्होंने भी प्रसन्न होकर दिव्यास्त्र दिये, जिन्हें पाकर अर्जुन कृत्य २ होगये। इतना ही नहीं, देवराज इन्द्र ने अर्जुन को स्वर्गलोक भी दिखलाया और इन्द्रपुरी में सम्मान से रक्खा। इस बीच में इंद्रपुरी में राक्षसों ने चढाई करदी थी, अर्जुन ने बड़ी वीरता से उन्हें मार भगाया, जिससे प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने बहुत से अमोघास्त्र अर्जुन को दिये। अर्जुन अनेक महास्त्र प्राप्त करके संसार विजयी हो गये। उधर भ्रातृगण चिंता में गिरफ्तार हैं, उन्हें याद आने पर वे स्वर्ग से विदा हुए।

पांडवों की तीर्थ-यात्रा

चारों पांडव अर्जुन के वियोग में बड़े चिन्तित रहने लगे। द्रौपदी तो बहुत ही व्याकुल हो उठी। किसी का मन न लगा कितनी ही बार वे सब व्याकुल होकर अर्जुन की खोज में चलने को तैयार हो गये। अन्त में उन्हें अर्जुन का कुशल समाचार स्वर्गलोक से आये हुए महर्षि लोमश से मिला, तब वे धैर्य धर कर, अर्जुन के आने में जितना समय लगेगा उतना व्यतीत करने के लिए तीर्थयात्रा के लिये तैयार होगये क्योंकि महर्षि लोमश जा रहे थे।

तीर्थयात्र. में पांडवों ने बड़े २ चमत्कारी और विकट स्थान देखे, अगणित रमणीक स्थान देखे और प्रसन्नता पूर्वक तीर्थयात्रा की, अन्त में बद्रिकाश्रम के निकट पहुंचे। यह रास्ता बड़ा विकट था, द्रौपदी को ले जाना कठिन हो गया। यहाँ इस समय भीम

ने अपने पुत्र घठोत्कच्छको याद किया। वह मायावी राक्षसी हिडिम्बा का पुत्र था। याद करते ही आ गया। भीम आदि ने उसे कंठ से लगाया, युधिष्ठिर तथा द्रौपदी उस बलशाली पुत्र को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। भीम की आज्ञा से वह क्षण मात्र में उड़कर अपने राक्षस दल को बुला लाया। घटोत्कच्छ ने माता द्रौपदी को अपने कन्धे पर उठाया, बाकी सबको राक्षसोंने उठाया और बात की बात में कठिन रास्तों को पार कर परम रमणीक "गन्धमादन पर्वत" पर पहुंचा दिया। यहां आ कर सब बड़े ही हुए और अर्जुन के आने की आशा में समय व्यतीत करने लगे।

अद्भुत मिलन

गन्धमादन पर्वम पर रहते हुये एक दिन द्रौपदी बन विहार कर रही थी, साथ में भीमसेन थे। हवा के झोंके में सहसा एक बड़ा सुगन्धित कमल पुष्प जो देखने में बड़ा ही मनोहर था, द्रौपदी के पास आ गिरा। उसे देखकर द्रौपदी बड़ी ही प्रसन्न हुई, वैसा कमल आज तक न देखा गया था। भीमसेन तथा द्रौपदी दोनों वैसे कमलों का हार बनाकर युधिष्ठिर को भेंट करना चाहते थे। जब कमल न मिला तो द्रौपदी ने भीम से कहा—"प्राणनाथ! यह कमल जहाँ से हो ला दीजिए।"

प्रिया की बात भीमसेन न टाल सके, वे उसी समय द्रौपदी को युधिष्ठिर की ओर भेजकर अपनी गदा उठाकर कमल की तलाश में निकले। वृक्षों को रौंदते अपने बल में झूमते हुए भीम वन की ओर बढ़े। कुछ दूर निकल जाने पर उन्होंने देखा कि एक महाकाय बन्दर रास्ते में बड़े आराम से सो रहा है।

भीम उसके पास जाकर खड़े होगये और उन्होंने पैर से उसे हटाना चाहा परन्तु वह तिल भर भी न हटा। भीमसेन को गर्व सा हुआ और एक बार गरज उठे।" बन्दर ने अपनी आंखें खोली और गम्भीर भाव से कहा—"जाओ, चले जाओ" हमें रास्ते से न हटाओ। यहां बल दिखाने से काम न चलेगा।"

बन्दर की यह बात सुनकर भीम एक दम गरम होगये और उन्होंने चाहा कि "इस बन्दर की पूंछ पकड़कर हटादूं और अपना बल जरा दिखला दूं।" यह विचार कर भीमसेनने उस की पूंछ पकड़ कर उसे हटाने के लिए उग्र समय डाला, परन्तु तिल भर भी वह बन्दर अपने स्थान से न हटा। भीमसेन पूरा जोर लगाकर भी जब उसे तिल भर न सरका सके तो वे समझ गये कि यह कोई देवता हैं। भीमसेन ने नम्रता धारन करके कहा—हे महाबली! आप कौन हैं? मैंने अभियान में आकर अपना पूरा बल खर्च किया, परन्तु आपको हिला न सका, अवश्य ही आप अपना आप छिपाये हुये कोई महापुरुष या देव हैं। मेरा अपराध क्षमा करें और अपना परिचय दें।"

भीमसेन के नम्र वचन सुनकर बानर ने कहा—"भाई भीमसेन! मैं तुम्हारा भाई हूँ, मैं श्रीराम का चरण-सेवक और पवन-पुत्र हनुमान हूँ। तुम भी वायु देव के वर पुत्र हो, अतः मेरे बन्धु हो, मैं तुम्हारा साहस देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। आओ भाई गले मिलें।"

दोनों ने परस्पर प्रेमालिंगन किया फिर एक स्थान पर बैठे, भीम के कहने पर उन्होंने अपना सत्यरूप धारन किया। दोनों ने परस्पर एक दूसरे की कुशलक्षेम पूछी, तदन्त्र हनुमान जी ने भीम

से उधर आने का कारण पूछा। भीमसेन ने कमल के विषय में सारा हाल कह सुनाया। इस पर हनुमानजी ने कहा "भाई! यह कमल कुबेरदेव के निवास स्थान पर एक सरोवर में उत्पन्न होता है और यह वहीं मिलेगा।" वह स्थान बताकर और कई प्रकार की बातें करते हुये कुछ दूर तक हनुमानजी गये फिर भीमसेन को धैर्य देकर तथा विजयी होने का आशीर्वाद देकर यह कहते हुये कि "जो कपिध्वज रथ महावीर अर्जुन को अग्निदेव ने वरुणदेव से लाकर खांडववन दहनके समय दिया था, उस रथपर मैं अपने पूरे बलसे सवार रहता हूँ, अर्जुन उस रथपर सदैव विजयी हुआ करेंगे। सब मेरे प्रिय भाइयोंको मेरा आशीर्वाद देना। मैं संसारिक मायासे दूर हो कर श्रीराम भजन किया करता हूँ और यहीं तपश्चर्या में लगा रहताहूँ।

भीमसेन बजरङ्गबली जैसे पूज्य संसार-विजयी भ्राता से मिलकर बड़े ही प्रसन्न होते हुये कुबेर के उसी सरोवर की ओर बढ़े जो हनुमानजी ने बताया था। वे वहां दूसरे दिन पहुंचे और वह नवीन स्वर्ग देखा जहां के सरोवर में कमल शोभा दे रहे थे। भीमसेन ने उन कमलों को तोड़ना शुरू किया ही था कि कुबेर के महाबली राक्षसगण आ पहुंचे। राक्षसों ने मना किया कि "कमल किसी को तोड़ने की आज्ञा नहीं।" भीमसेन न माने तो राक्षसों ने उन पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन ने भी गदा उठा ली और हाहाकार मचा दिया। बहुत राक्षस मारे गये और कुछ रोते-पीटते कुबेर के पास पहुंचे। कुबेरदेव तुरन्त छद्म वेष धारण कर अपने क्रीड़ास्थल पर पहूँचे और जब उन्होंने भीमसेन को पहचाना तो उनको शांत किया और आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहा और आने का कारण पूछा।

अभी भीमसेन उत्तर भी न दे सके थे कि इतने में युधिष्ठिर नकुल, सहदेव, घटोत्कच्छ और द्रौपदी उनको खोजते हुए आ पहुंचे। कुवेर ने उन्हें वड़े सम्मान से बैठाया और कुशल क्षेम पूछी। इसके वाद पाण्डवों ने अपना सब हाल कहा जिससे कुवेर वड़े दुखित हुए उन्होंने धैर्य देकर अपने सेवकों को बुलाकर उनके आराम का सब प्रवन्ध कराया और वड़े सम्मान से अपने पास रहने की इच्छा पांडवों से प्रकट की। पाँडव वड़ी प्रसन्नता से वहां कुछ दिन रहने के लिये तैयार होगये।

पांडवों को यहां स्वर्ग समान सुख था परन्तु उनमें से एक भी ऐसा न था जिसे महावीर अर्जुन से मिलने की इच्छा ने उतावला न बनाया हो। वे जितना आनन्द देखते थे उतना ही अर्जुन विना फीका जान पड़ता था। द्रौपदी को तो एक २ पल अर्जुन के विरह में युगके समान वीत रहा था। यहां उनका मन न लगा और फिर गन्धमादन पर्वत पर चले गये क्योंकि अर्जुन के आनेका मार्ग वही था। कुवेरजी ने अपने सेवकादि संग दिये और जव तक अर्जुन न आवे सव तरह उनके आराम का प्रवन्ध रखने की आज्ञा दी। पाँडव वड़ेप्रसन्न चित्त से कुवेरदेव को धन्यवाद देते हुए विदा हुए। दूसरे दिन संध्या समय पहुंच गये। यहां भी अर्जुन विना उनका मन उदास ही रहा।

कुछ ही दिन के वाद एक दिन सव इकट्ठे होकर पर्वत की सैर कर रहे थे, एकाएक उन्हें गर्जना ध्वनि सुनाई दी और आकाश में गुव्वार सा दिखाई दिया। कुछही समय में उन्होंने स्वर्णमयी किरणों से प्रकाशित इन्द्र का दिव्य रथ आता देखा, फिर क्रमशः मुकुट धारी महा तेजस्वी स्वरूप देखा जिससे उन्हें

यह जान पड़ा कि आगे २ इन्द्रदेव अपने रथ पर सवार हुए आते हैं, पीछे अर्जुन भी अवश्य होंगे। आशा और प्रसन्नतासे सबके हृदय-कमल खिलगये। जब एक ही रथ दिखाई पड़ा तो फिर डांवाडोल होने लगे। अन्त में रथ पास ही आगया और द्रौपदी ने पहचान लिया कि महा तेजस्वी स्वरूप अर्जुन का ही रथ है, वह मोहित होती हुई हृदय थाम कर बैठ गई। अर्जुन मारे प्रसन्नता के रथ के ऊपर से कूद पड़े और युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पड़े। युधिष्ठिर ने उन्हें उठाकर कंठ से लगाया और प्रेमाश्रु बहा दिये। चारों भाई पहले तो बारी-बारी मिले फिर द्रौपदी दौड़ कर उनसे लिपट गई। अब इस दुर्लभ सम्मिलन का विस्तार कहाँ तक किया जाय? कठिन है, कठिन है।

जब सब का हृदय शान्त हुआ और परस्पर अच्छी तरह मिल चुके तो उसी रथ पर सवार होकर यथा स्थान पहुंचे। वहां पर भोजनादि से निवृत होकर एक संग बैठे। युधिष्ठिर के पूछने पर अर्जुन ने आदि से अन्त तक सब वृतान्त कह सुनाया। अर्जुन के सब भांति विजयी होकर आने का समाचार सुन कर और उनके तेजोमई स्वरूप देखकर चारों भाई तथा द्रौपदी कितने प्रसन्न और गौरवान्वित हुए कहना कठिन है।

अर्जुन ने इन्द्रलोक के अमूल्य रत्न द्रौपदी को दिये वह तो गद् गद् हो गई आज द्रौपदी ने अर्जुन को पाकर यही समझा कि त्रैलोक्य का राज्य मिल गया।

अब बड़े आनन्द से समय व्यतीत होने लगा एक दिन अर्जुन ने प्राप्त महास्त्रों के कुछ चमत्कार दिखा कर भी सब को विश्वास दिला दिया कि अर्जुन के बाहुबल पर ही हम विजयी होंगे।

पांडव और श्रीकृष्ण

"गन्धमादन" से लाचार, पांडव काम्यकवन में लौटे और वहां श्रीकृष्ण, सत्यभामा, अभिमन्यु और द्रौपदी के पांचों पुत्र मिलने के लिये आ पहुंचे।

एक दिन जब इकट्ठे होकर बैठे तो अपना राज्य दुर्योधन से लौटने की बातें भी हुई और निश्चय हुआ कि "कुछ समय बाद बारह वर्ष पूरे होने वाले हैं फिर एक वर्ष गुप्त रूप से रहना होगा।" यह समय बिताकर अपना हक मांगा जाय और यदि वह न दे तो उनसे बल पूर्वक लेकर उन्हें करनी का प्रतिदान दिया जाय।"

इसके बाद बहुत दिन तक श्रीकृष्ण वहाँ रहे और बड़े आनन्द से समय बिताया। पांडवों ने जो आनन्द यहां पाया यह उन्हें राज्य सुख से कहीं अच्छा ज्ञात हुआ वास्तव में प्रकृति का जो आनन्द ऋषि मुनि गण लूटते हैं वह संसार में बड़ा से बड़ा राजा भी नहीं लूट सकता।

द्रौपदी और सत्यभामा में स्त्री शिक्षा पर बड़ा शास्त्रार्थ हुआ था। द्रौपदी ने अपने ज्ञानागार से जब उपदेश रत्न निकाले तो सत्यभामा मोहित होगई! यहीं से द्रौपदी तथा सत्यभामा में अकथनीय प्रेम हो गया। वे दोनों मिलकर वहां इस प्रकार रहीं, यानी राजमहल उनके लिये तुच्छ ही हो गये। उन दोनों का वन विहार देखकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन बड़े ही प्रसन्न हुए कि "द्रौपदी को वनवास के दुःख भूल गये।"

कुछ दिन के बाद श्रीकृष्ण सबको आश्वासन देकर विदा हुये। पांडव भी कुछ दिन ठहर कर फिर द्वैत बन में गये, यह

वन हस्तिनापुर के राज्य में ही था, यहीं वारह वर्ष पूरे करने के लिये पांडवों ने स्थान सोचा।

अहंकार मर्दन

पाँडवों के द्वैत वन में आने का समाचार हस्तिनापुर पहुंच गया और अब उनके वारह वर्ष पूरे होने को हैं, यह भी सबको ज्ञात होगया। धृतराष्ट्र तो पिघल गये, परन्तु दुर्योधन की चांडाल चौकड़ी और भी उत्तेजित हो उठी।

दुर्योधन और कर्ण ने अब द्वैत वनमें जाकर पांडवों को चिढाने की तदवीर सोची और अपनी शान दिखाने का शौक कूद पड़ा। सबने मिलकर अपने राज्यकी गौवोंकी देख रेख का वहाना निकाला और धृतराष्ट्र से आज्ञा मांगी। धृतराष्ट्र समझ गये कि "यह सब पांडवों से फितूर मचाये विना न रहेंगे" उन्होंने मना किया, पर ये लोग उन्हें सब तरह तसल्ली देकर द्वैत वन जाने को तैयार हो गये।

दुर्योधन—कर्ण, दुःशासन, शकुनि तथा अन्य भाइयों को लेकर वड़ी सज वज और सेना के साथ द्वैत वन की ओर अग्रसर हुआ! वे सब मन ही मन पांडवों को तरह तरह की बातों से लज्जित और अपमानित करने का विचार करते हुए द्वैत वन की सीमा में जा पहुंचे। वहां पहुंच कर दुर्योधन ने एक रमणीक स्थानपर अपने खेमें गढ़वा दिये और बड़ी शान से गौवों की देख रेख करने लगे।

उस समय द्वैत वन के पास ही एक रमणीक सरोवर के निकट गन्धर्वराज "चित्रसैन" निवास करते थे। एक दिन संध्या के समय चित्रसैन अप्सराओं सहित वन-विहार कर रहे थे।

इधर से दुर्योधन ने भी उस स्थान की प्रशंसा सुनकर वहां जाना विचारा और सेवकों को वहां शिवर लगाने की आज्ञा दी, जब सेवक गण सरोवर के निकट गये तो गन्धर्वों ने उन्हें रोका। वे सब दुर्योधन के पास लौट आये और सारा हाल कहा। दुर्योधन को बहुत क्रोध चढ आया और अहंकार में भरकर उसने फिर सेना को भेजा कि "गन्धर्वों को निकाल बाहर करो और शिविर वहां लगादो।"

दूसरी बार जब सेना पहुंची और गन्धर्वों से छेड़ शुरू हुई तो गन्धर्वों ने उन्हें मार भगाया। दुर्योधन को यह देखकर और भी क्रोध आगया और वह सब के सहित ही गन्धर्वों से लड़ने चला। होते २ घोर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में कर्ण तक थक गया और अपनी सेना सहित भाग निकला दुर्योधन भी रथ से गिरा दिया गया और गन्धर्वों के हाथ बंदी हुआ। यहाँ तक कि दुर्योधन की रानियां भी बंदी हुई। दुर्योधन के साथी घबराये और भागे, अन्त में वे सब तरह लाचार हुए, तब उन्होंने पांडवों के आगे जाकर सहायता की प्रार्थना बार बार की।

पांडवों को ज्ञात हो गया था कि कौरव हमारा ही अपमान करने की इच्छा से गर्व में भरकर आये थे, परन्तु ईश्वर ने उन्हें प्रतिदान दे दिया। जब शत्रु ही शरणागत हुए तो युधिष्ठिर का मन पिघल गया, दयासागर हृदय उमड़ आया और उन्होंने भाइयों की सहायता के लिये चारों भाइयों को तुरन्त आज्ञा दे दी। धन्य भाई! बड़े भाई ने उन्हीं की रक्षा के लिये आज्ञा दी कि जिनके विनाश की तैयारियां हो रही हैं, फिर भी उन्होंने आज्ञा नहीं टाली और गन्धर्वों का पीछा किया।

युद्ध छिड़ा ही था कि चित्रसेन सामने आकर अर्जुन से बोले--"दोस्त अर्जुन ! तुम तो मेरे दोस्त हो चुके हो, आज दोस्त से युद्ध करने आये हो !" अर्जुन ने जब दोस्त को देखा तो वे शांत होकर बोले--"दोस्त चित्रसेन ! मुझे ज्ञात न था कि आप ही हैं। अब आपने मेरे भाइयों को वंदी किया है और मैं उन्हें छुड़ाने आया हूँ कहिये क्या किया जाय ?"

उत्तर में चित्रसेन ने कहा "दोस्त ! ये सब आपके विनाश की तैयारियां कर चुके थे और यहां भी आपको अपमानित करने के लिये आये थे। मैंने इन सबको, पांडवों के केवल एक दोस्त मात्र का बल दिखाने के लिये दुर्योधनादि को वंदी किया है। उनका अहंकार तो मैंने तोड़ दिया है, महाबली कर्ण तक को भगा दिया है, अब आपकी आज्ञा हो तो छोड़दूं।"

अर्जुन ने चित्रसेन को बहुत कुछ धन्यवाद दिये और कौरवों को छुड़ा दिया। दुर्योधनादि को इस समय मरने के लिये स्थान ढूंढना पड़ा, बड़ी ही लज्जाजनक बात हुई। वे मारे लज्जा के पांडवों से मिले और फिर मुंह देखी बातें करते हुये यहां से चल दिये। कुछ दूर आगे चलकर कर्ण मिला, वह भी कोई गढा ढूंढ रहा था। सभी अपनी करनी पर पश्चाताप करने लगे। दुर्योधन ने यहां तक साफ कह दिया कि "मैं इस तरह अपमानित होकर राज्य में जाने के योग्य नहीं रहा।" कर्ण ने उसे शांत करने के लिये "पांडवों को मारने की बड़ी २ प्रतिज्ञायें की" परन्तु वह लज्जा में ही डूबा रहा और अनशन व्रत करके प्राण देने को तैयार होगया। शकुनी आदि ने उस समय बहुत कुछ धैर्य दिया, अन्त में पातालवासी दैत्यों के राजा ने अपनी एक

दूती द्वारा दुर्योधन से कहलवाया कि "तुम चिन्ता न करो, तुम पांडवों पर विजयी होंगे, हम सब तुम्हारी सहायता गुप्त रूप से तुम्हारे वीरों के शरीर में प्रवेश करके करेंगे, तुम घर लौट जाओ।"

अब दुर्योधन शांत हुआ और भ्रातृ-स्नेह एकदम काफूर हो गया, वरन उनके विनाशकी कामना कर हस्तिनापुर लौट गया। हस्तिनापुर में पहले ही सब समाचार पहुंच चुका था। कौरवों के लौटने पर धृतराष्ट्र, विदुर, द्रोण, भीम आदि वृद्धजनों ने उन्हें शरमिन्दा किया और पांडवों से सन्धि कर लेने की सलाह दी। सब कुछ हुआ, परन्तु कुत्ते की पूंछ टेढ़ी की टेढ़ी ही रही। वे बड़ों की बातों को हंसी में उड़ाते हुए यथा स्थान चल दिये।

कौरवों का महायज्ञ

द्वैत वन से आने के बाद दुर्योधन इन्हीं विचारों में मगन था कि किसी प्रकार पाँडवों के सामने प्रतिष्ठा प्राप्त करूं और उनका विनाश कर मैं ही राज्य सुख-भोग करूं। बातों ही बातों में एक दिन कर्ण ने कहा—"भाई दुर्योधन! मैं इतनी हिम्मत रखता हूँ कि अकेला ही सारे भारत को जीत कर दिग्विजयी होऊं और तुम्हें पांडवों की तरह भारत सम्राट् बनाऊं।"

कर्ण की यह बात सुनकर दुर्योधन बड़ा ही प्रसन्न हुआ, उसने कर्ण की वीरता की बड़ी प्रशंसा की और राजसूय-यज्ञ कर पांडवों की तरह भारत-सम्राट होने की कामना प्रगट की। कर्ण तैयार ही था, अतः बात-चीत तय करके वे सब राजा धृतराष्ट्र के दरबार में गये। धृतराष्ट्र ने जब यह सुना कि कर्ण अकेला

दिग्विजय करेगा, तो वे भी उत्सुक हो उठे और पंडितों को बुलाकर राजसूय-यज्ञ करने की सलाह पूछी। पंडित ने विचार कर कहा—"राजा धृतराष्ट्र या युधिष्ठिर के बैठे दुर्योधन राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते, परन्तु उसी के समान विष्णु-यज्ञ कर सकते हैं, जिसमें यज्ञ भूमि सोने का हल बनाकर जोती जाती है।"

यही विष्णु-यज्ञ करने का विचार पक्का होगया और तैयारियां होने लगीं। दुर्योधन ने शुभ दिन में सारी चतुरङ्गिनी सेना देकर कर्ण को दिग्विजय के लिये विदा किया और आप भी प्रजा तथा निकटवर्ती राजाओं को वशमें करने का उपाय करने लगा।

थोड़े ही दिनों में कर्ण चारों दिशाओं के राजाओं को जीत कर दिग्विजयी होकर हस्तिनापुर आये। दुर्योधन ने बड़े ही समारोह से उसका स्वागत किया। कर्ण ने अकेले ही दिग्विजय करके अपनी जिस वीरता का परिचय दिया, इससे कौरव फूले न समाये और कर्ण को छाती से लगाकर सब उसकी प्रशंसा करने लगे। अब उन्हें पाँडवों पर विजय प्राप्त करने का निश्चय होगया।

यज्ञ की तैयारी बड़े उत्साह से होने लगी। कर्ण बहुतसा स्वर्ण राजाओं से जीत कर लाये थे, उसी का हल बनवाया गया और यज्ञ की पूरी तैयारी होने लगी। सब तरफ निमन्त्रण भेजे जाने लगे और यज्ञ-मण्डप बनने लगा। थोड़े ही दिनों में सब काम तैयार होगया और शुभ महूर्त्त में यज्ञ आरम्भ होने का दिन निकट आया।

हस्तिनापुर में बड़ी ही धूम होनेलगी। मित्रगण आने लग गये, आदर सत्कार का बाजार गरम होगया, पांडवों को भी निमंत्रण भेजा गया, पर वे तेरह वर्ष की प्रतिज्ञा पर दृढ़ थे,

अतः वे न आये बाकी सब इष्ट दोस्त तथा बन्धुगण आ पहुंचे। शुभ दिन में यज्ञ आरम्भ होगया। यह यज्ञ विधि पूर्वक समाप्त हुआ। दुर्योधन ने इस यज्ञ में अगाध धन खर्च किया, बहुत दान किया और सब तरह निवृत्त होकर वह सम्राट पद से विभूषित किये गये।

इस राज-सभा में कर्ण ने पांडवों का नाश करने के लिये भीषण प्रतिज्ञा की और अर्जुन को मार डालने की प्रतिज्ञा में असुर व्रत धारण करने का संकल्प किया और यह कहा कि "इस व्रत में मुझसे जो कोई जिस तरह का दान माँगेगा मैं वही दान दूंगा, इस व्रत में किसी भी याचक को निराश कर अपने द्वार से न हटाऊंगा।"

इस महा यज्ञ और कर्ण की प्रतिज्ञा का समाचार पांडवों को मिला, तो वे बहुत चिन्तित होने लगे और ईश्वर के भरोसे फिर काम्यक बन में जाकर अपना समय व्यतीत करने लगे।

द्रौपदी हरण

पांडव शिकार खेलने गये हुए थे। द्रौपदी आश्रम के निकट ही एक कदम्ब के वृक्ष के पास खड़ी थी। दुर्भाग्य से घूमता फिरता जयद्रथ उधर ही आ निकला और द्रौपदी को देखकर मोहित हो गया। उसने पहले अपना दूत भेजकर द्रौपदीका परिचय प्राप्त किया और फिर निकट आया। द्रौपदी उसे आश्रम में लेगई और उसका सत्कार किया। जयद्रथ ने इसी समय मौका पाकर अपनी पापकामना प्रगट की।

सती द्रौपदी उसकी यह पाप वासना जानकर महा क्रोधित हुई और बार बार उसे धिक्कारने लगी। जयद्रथ ने उसे बहुत

कुछ प्रलोभन दिखाकर वश में करना चाहा, परन्तु जब वह जान गया कि यह पतिव्रता है, तो वह बल पूर्वक उसे हरण करने की इच्छा करने लगा। अन्त में बात बढ़ गई, जयद्रथ ने बलपूर्वक द्रौपदी को हरण कर अपने रथ पर बिठा लिया और ले चला। द्रौपदी की पुकार सुनकर साधू इकट्ठे होगये, धौम्य मुनि भी आगये और उन्होंने जयद्रथ के रथ का पीछा किया, पर उसे न पा सके।

इसी बीचमें पांडवभी आगये और जब उन्हें सारा हाल धौम्यजी ने कहा तो पांचो भाई महाक्रुद्ध होकर अपना २ शस्त्र सम्हाल कर जयद्रथ के पीछे दौड़े। कुछ ही दूर पर सामना होगया। जयद्रथ के साथ उस समय कितने ही महाबली राजा थे, अन्त में युद्ध छिड़ गया, नामी २ योद्धा मारे गये। जयद्रथ डर गया और वह द्रौपदी को अपने रथ से उतार कर भाग गया।

द्रौपदी की रक्षा हुई, फिर भी पांडव शान्त न हुए और द्रौपदी की इच्छा से भीम और अर्जुन फिर जयद्रथ के पीछे दौड़े, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने मना कर दिया कि "उस भगोड़े जयद्रथ को जान से न मारना।" युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव द्रौपदी को लेकर डेरे पर लौटे और अर्जुन तथा भीम जयद्रथ की ओर रथ दौड़ाकर चले। कुछ ही दूर पर भागते हुए जयद्रथ के रथके घोड़ों को अर्जुन ने तीरों से मार गिराया। जयद्रथ अब रथ छोड़कर पैदल ही भागने लगा, परन्तु भीमसेन ने उसे पकड़ कर जमीन पर दे पटका और लात घूंसों से उसकी मरम्मत करने लगे।

जयद्रथ अन्तमें बेहोश होगया। भीम उसे जानसे ही मार

देना चाहते थे परन्तु अर्जुन ने कहा--भाई भीम ! इसे जान से न मारो धर्मराज की आज्ञा थी। यह अब बेहोश होगया है, तथा बार २ प्रार्थना कर चुका है, ऐसी अवस्था में मारना भी धर्म नहीं है।"

अन्त में उसके होश आने पर दोनों ने उसे खूब धिक्कारा, अर्जुन ने उसका सर ही मूंड़ डाला। जयद्रथ बहुत गिड़ गिड़ाया और क्षमा मांगने लगा। दोनों ने उसकी मुश्कें बाँधी और उसे लेकर डेरे पर आये। वहाँ युधिष्ठिर के सामने जयद्रथ ने क्षमा मांगी अन्त में द्रौपदी की इच्छा से वह छोड़ दिया गया।

सर्प को कितना ही दूध पिलाकर पालो परन्तु वह समय पाकर अपने स्वभाव पर आकर अवश्य ही डंक मारेगा। जयद्रथ जब पांडवों से छूट कर चला तो उन्हीं का विनाश सोचने लगा। वह राजधानी को लौट कर नहीं गया और घोर तपश्चर्या करने लगा। शिवजी उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रगट हुए और वर देने लगे। जयद्रथ ने पांडवों को जीत लेने का वर मांगा। शिवजी ने कहा "पाण्डवों को जीतना तुम्हारा असम्भव है क्यों कि वे अजेय हैं। अर्जुन हमें प्रसन्न कर पाशुपत प्राप्त करचुका है, अतः अर्जुन को छोड़कर अन्य चारों को तुम एक दिन जीतोगे" यह कह कर सदा शिव अन्तर ध्यान हो गये। जयद्रथ वर पाकर प्रसन्न होता हुआ अपनी राजधानी में गया।

कर्ण का महादान

कर्ण ने अर्जुन को मारने की इच्छा से असुर व्रत धारण किया और प्रतिज्ञा की थी कि "व्रत जब तक रहेगा तब तक मुझ से जो कोई जो दान मांगेगा सो मैं दूंगा।"

कर्ण की इस प्रतिज्ञा का समाचार जान कर इन्द्रदेव को पांडवों का ध्यान आया। वे स्वर्गलोक में गये, अर्जुन के सामने प्रतिज्ञा कर चुके थे कि "मैं कर्ण का कवच-कुण्डल किसी तरह ले लूंगा" अब वे कर्ण से वह कवच-कुण्डल दान लेने के लिये तैयार हो गये और ब्राह्मण का रूप धर कर चले।

कर्ण सूर्य के वर पुत्र थे। जब उन्होंने इन्द्रदेव को जाते देखा तो वे तुरन्त ही पहले कर्ण के पास पहुंचे और बोले "पुत्र कर्ण ! जब तक यह कवच-कुण्डल तुम्हारे शरीर पर हैं तब तक तुम्हें कोई नहीं मार सकता क्यों कि यह मेरा है और तू मेरा ही पुत्र है। इन्द्र तेरा कवच-कुण्डल छल से माँगने आ रहे हैं, यदि दे दोगे तो तुम्हारा नाश अवश्य होगा।

कर्ण ने यह सुनकर सूर्य भगवान् की बड़ी-उपमा की और वन्दना की, फिर कहा "पिता ! मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि व्रत तक जो दान मांगेगा मैं दूंगा। अगर इन्द्रदेव भिखारी बन कर आते हैं तो मैं उन्हें दान दूंगा परन्तु अपनी कीर्ति न गवाऊंगा।"

सत्य प्रतिज्ञा कर्ण की दृढ़ता देख सूर्यदेव प्रसन्न होकर बोले "पुत्र तू धन्य हो तेरा यश अमर हो ! अच्छा सुनो ! यदि कवच-कुण्डल देना तो इन्द्रदेव से शत्रु-घाती शक्ति बदले में मांग लेना, जिससे तुम्हारा भला होगा" यह कहकर सूर्यदेव अन्तर ध्यान होगये।

ब्राह्मण-वेष में इन्द्रदेव आये और दान के समय कवच-कुण्डल का दान मांगा। अन्त में महादानी कर्ण ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने शरीर से कवच-कुंडल काट कर इन्द्र के आगे रख दिया। इन्द्रदेव ने इस महादान से प्रसन्न होकर कर्ण को

सावधान किया और वर देने को तैयार हुए। कर्ण ने शत्रु घातिनी शक्ति मांगी, इन्द्रदेव को देनी पड़ी। इन्द्रदेव ने शक्ति देते हुए कहा कि "कर्ण ! हम यह शक्ति देते हैं पर इसे एक ही बार काम में ला सकोगे सदैव नहीं। जब इससे काम लोगे तब यह तुम्हें विजयी बनाकर मेरे पास आजायगी।"

कर्ण ने तो अर्जुन के मारने की अभिलाषा से यह शक्ति मांगी है, उसका कार्य पूर्ण हो गया, इससे वह इतने में ही प्रशन्न हो गये और इन्द्रदेव बिदा हुए।

नव जीवन

विपत्ति ने किसी को न छोड़ा। सुख और दुःख कर्मानुसार अवश्य ही भोगना पड़ता है। कर्म बन्धन में पाण्डव ही नहीं स्वयं देवता भी बंधे हैं।

बन में जहां पांडव रहते थे उनके निकट ही एक कुटी में एक ब्राह्मण रहता था ब्राह्मण ने आग बालने के लिये अरणी नामक लकड़ी अपनी कुटी के बाहर रख छोड़ी थी। यह अरणी एक प्रकार का काष्ठ है, जिसको रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। उस समय आज की तरह दियासलाई न थी अतः इसी लकड़ी को रगड़ कर आग पैदा की जाती थी अरणी बड़े परिश्रम से मिलती है अतः लोग इसे यत्न से रखते थे।

ब्राह्मण की अरणी कुटी के बाहर पड़ी थी, संयोग वश एक बारहसिंहा उधर आ निकला। उसने वहीं पर अपने सींघ अड़ाकर खुजलाना शुरू किया जहां अरणी पड़ी थी। वह अरणी उसके सींग में फंस गई और वह चला। ब्राह्मण उसके पीछे दौड़ा पर न पा सका। अन्त में उसने पाण्डवों की शरण ली। पांडवों ने

उस हिरन का पीछा किया, एक जगह वह दिखाई दिया। सबने उस पर बाण चलाये पर वह ज्यों का त्यों खड़ा रहा और उसके चोट न लगी कुछ ही समय में वह लोप हो गया और पांडव बड़े हैरान होकर खोज करने लगे, अन्त में उसका पता ही न लगा। उसकी तलाश में दौड़ते २ सब को प्यास लग आई। युधिष्ठिर ने नकुल को पानी लाने की आज्ञा दी और सब वहीं बैठ गये। नकुल जल लेने के लिये चल पड़े।

थोड़ी ही दूर नकुल गये तो उन्हें एक तालाब नजर आया। नकुल उसमें पानी पीने और लेने के लिये उतरे परन्तु ज्योंही उन्होंने जल में हाथ डाला त्योंही एक बुलन्द आवाज उन्हें सुनाई पड़ी कि "खबरदार! यहां से एक बूंद भी जल न लेना।" यह आवाज़ सुनकर नकुल चौंक पड़े, उन्होंने चारों तरफ देखा और सुना पर कुछ पता न लगा कि यह आवाज़ किसकी है। अन्त में नकुल ने जल पी लिया। जल पीने भर की देर थी, नकुल उसी समय मूर्छित होकर वहीं गिर पड़े।

नकुल को लौटते न देख और देर होने के कारण फिर सहदेव गये, उनका भी यही हाल हुआ। क्रमशः अर्जुन और भीम भी इसी तरह गये और मूर्छित होगये। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर प्यास से व्याकुल होते हुए गये। जब उन्होंने देखा कि चारों भाई मरे पड़े हैं, तो उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। वे उतरकर चारों भाइयों की लाश के पास बैठ गये और विलाप करने लगे। प्यास के मारे वे व्याकुल थे, उन्होंने भी पानी पीना चाहा और वही आवाज सुनाई पड़ी। युधिष्ठिर थम गये और उन्होंने आवाज़ दी "जो हो सामने प्रगट होकर बात करे।"

उसी समय उस तालाब का स्वामी एक यक्ष उसके सम्मुख आया और बोला—"तुम्हारे भाइयों ने मेरा कहना नहीं माना इसी से उनकी यह गति हुई है, यदि तुम भी न मानते तो यही हाल होता।" युधिष्ठिर ने उत्तर में कहा—"आप क्या चाहते हैं और क्यों मेरे भाई मारे गये, मुझेभी जल क्यों नहीं पीने देते ?"

यक्ष ने कहा—"कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनका सत्य उत्तर देने पर आप जल पी सकेंगे।" युधिष्ठिर ने उसके प्रश्नों का उत्तर देना स्वीकार किया। यक्ष के प्रश्न धार्मिक तत्व जानने के लिये थे। अतः धर्मराज ने उन्हें उत्तर देकर सन्तुष्ट कर दिया। यक्ष ने प्रसन्न होकर उन्हें पानी पीने की आज्ञा दी। जब वे जल पीकर शान्त हुए तो यक्ष ने कहा—"धर्मराज! मैं आपसे बड़ा प्रसन्न हुआ वर मांगिये" युधिष्ठिर ने भाइयों को जिन्दा करने को कहा। यक्ष ने कहा—"जो एक भाई तुम्हें सब में प्यारा हो उसी को मैं जीवन दान दे सकता हूँ।" युधिष्ठिर ने उस समय नकुल को जिलाने को कहा। यक्ष ने पूछा "महाबली भीम और अर्जुन को छोड़ आपने नकुल को क्यों माँगा ?" धर्मराज ने कहा, हम तीनों माता कुन्ती के पुत्र हैं, जिनमें मैं तो जीता ही रहा, अब माता माद्री के एक पुत्र को जीवित कराना चाहता हूँ जिससे उन्हें धैर्य होगा।

तब यक्ष ने प्रसन्न होकर चारों को जिन्दा कर दिया और अपना परिचय भी दिया कि मैं "धर्म" हूँ, मैंने ही हिरन का रूप धारा था, जिसके पीछे तुम सब लगे थे। युधिष्ठिर! मैं तुम्हारा पिता हूँ तुम मेरे ही वर पुत्र हो, अतः जो चाहो मांग लो।

इस पर युधिष्ठिर ने ब्राह्मण देवता की वह अरणी मांगी।

धर्मदेव ने वह अरणी दी और फिर वर मांगने को कहा। इस पर युधिष्ठिर ने एक वर्ष अज्ञातवास करने के लिये रूप परिवर्तित करने की शक्ति मांगी। धर्मदेव ने कहा—पुत्र! अपने भाइयों का तुम जो रूप चाहोगे वही वन जायगा और कोई भी तुम्हें पहचान न सकेगा। अब तुम विराटपुरी में जाकर एक वर्ष व्यतीत करो।" यह वर देकर और आशीर्वाद देकर धर्मदेव अन्तर्ध्यान होगये।

पांडवों का नव-जीवन हुआ जिससे वे सब बड़े प्रसन्न होकर अपने आश्रम में लौटे। अरणी उस ब्राह्मण को दी. उससे आशीर्वाद लिया फिर वे सानन्द वारहवें वर्ष का अन्तिम समय वहाँ व्यतीत करने लगे।

विराट--पर्व

परामर्श

पाण्डवों के वनवास के वारह वर्ष व्यतीत होगये। यह वारह वर्ष उन्होंने किस प्रकार धर्म और कर्त्तव्य का पालन करते हुए व्यतीत किये हैं यह स्पष्ट है। जो सत्य और धर्म को ही एक मात्र अपना संगी समझ कर विपत्ति का समय व्यतीत कर चुके हैं, उनके लिये अब एक वर्ष और व्यतीत करना क्या कठिन है?

कठिन तो नहीं, परन्तु कठिन से भी कठिन है, क्योंकि यह वर्ष ऐसा है। यदि वे इस वर्ष में किसी तरह प्रगट हो जायेंगे तो उन्हें फिर इसी प्रकार वार वर्ष वनवास करना होगा, दुर्योधनादि ने तो अपनी तरफ़ से यह निश्चय करके ही यह शर्त दी थी कि तेरहवें वर्ष किसी न किसी तरह से पता लग ही जायगा और वे फिर वनवास करेंगे, अर्थात् वे हमारे राज्य सुख

में बाधा देने योग्य ही न रह जायेंगे।

पांचों भाइयों ने अब बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर अपने बनवासी मित्रों तथा संग में रहने वाले साधु ब्राह्मणों को इकट्ठा करके कह दिया "महाजनो! आपके सत्संग और प्रताप से हमारे बारह वर्ष व्यतीत होगये, परन्तु अब तेरहवां वर्ष हमें महान् विपत्ति का व्यतीत करना है, इस वर्ष में यदि हम प्रगट होगये तो फिर बनवास है, अतः अब हमें गुप्त रूप से इस संसार में रहना है। आप को छोड़ते हुए हृदय विदीर्ण होता है, परन्तु हम विवश हैं, अब हमें विदा करिये और आशीर्वाद दीजिये।

ऐसा कोई व्यक्ति न था जिसकी आंखों से आंसू न टपके हों। प्रत्येक का गला भर आया, किसी ने मुंह तक न खोला। अन्त में महामुनि धौम्य ने सबको समझाकर शान्त किया और पांडवों को यात्रा करने का शुभ मुहूर्त्त बताया। उसी दिन से ब्राह्मण भोजन और दान यज्ञ सब सामर्थ्य के अनुसार पांडवों ने आरम्भ कर दिया। बड़ी श्रद्धा से सब ने पांडवों को आशीर्वाद दिये और सफल होने का वर दिया।

शुभ मुहूर्त्त में बिदा होकर पाँडवों ने मत्स्य देश की ओर यात्रा की। रास्ते में एक उत्तम स्थान में सब बैठ गये और परामर्श होने लगा कि "कौन किस रूप में कहां २ रहे?" परामर्श के अन्त में यह निश्चय हुआ कि "मत्स्य देश की विराट नगरी में सर्व श्रेष्ठ नृत्य राजा विराट के यहां पांचों चलें और एक संगही उनकी नौकरी करलें, काम अलग २ करें और समय पर एक दूसरे की सहामता भी कर सकें।" यह तो तय होगया, "अब सबका रूप क्या हो और कौन किस नौकरी पर

रहे. जिससे हम वर्ष भर गुप्त रह सकें ?"

इसका निश्चय यह हुआ कि युधिष्ठिर दरिद्री ब्राह्मण बनें और जुआ या चौपड़ खिलाने पर रहें, इनका नाम 'कङ्क' हो। भीमसेन 'वल्लभ' नामी पहलवान और ब्राह्मण रसोइये का काम करें। अर्जुन जनखे—कत्थक बनें और नाच गाने का काम सिखाने पर रहें और नाम "बृहन्नला" हो, ये राज-महल की स्त्रियों में रहें। नकुल घोड़ों के सईस बनें इनका नाम "ग्रन्थिक" हो। सहदेव गौओं की देख-रेख करने के काम पर रहें नाम "तन्त्रिपाल" हो द्रौपदी का नाम "सैरन्ध्री" हो, यह शृङ्गार करने के काम पर रानियों में रहे।

उपरोक्त विचार स्थिर करके पांडवों ने प्रस्थान किया और कुछ दिन में विराट नगरी पहुंच गये। सबने अपने २ शस्त्र एक जगह छिपाकर नौकरी की चेष्टा अलग २ आप की। जुआरी ब्राह्मण 'कंक' और रसोइये 'वल्लभ' ग्वाले 'तन्त्रिपाल' तथा अश्वपाल 'ग्रन्थिक' तो विराट राजा के दरबार में उपस्थित हुए। राजा विराट ने उनका तेजस्वी रूप देखकर काम पर रख लिया। उधर राज-महलों में 'बृहन्नला' कत्थक और दासी 'सैरन्ध्री' भी रख लिये गये।

पांचों ने अपने २ कामों में कमाल दिखाकर राजा विराट को अपने ऊपर मुग्ध कर लिया। राजा विराट प्रत्येक के काम में चमत्कार देखते थे, वे न जानते थे कि वे सभी सपत्नीक देवता हमारे महलों को पवित्र कर रहे हैं। अब "एक वर्ष में गुप्त रूप से पांडवों ने क्या क्या कमाल किये, यही आगे चलकर अज्ञात वास में प्रगट होगा।

अज्ञात--वास

रानी सुदेष्ण के पास दासी कार्य पर सैरिन्ध्री (द्रौपदी) थी, जिससे रानी उस पर मोहित थी। राजकुमारी उत्तरा को अर्जुन नृत्य गीत सिखाने में लगे, बृहन्नला राज परिवार तथा राज्य की महिलाओं में प्रसिद्ध होगये। यह विद्या वीर अर्जुन ने इन्द्रदेव के यहां रहकर इन्द्रपुरी में सीखी थी। युधिष्ठिर ने महामुनि बृहदश्व से जूआ खेलने की विद्या प्राप्त की थी, उन्होंने बड़े २ राजाओं को मात कर दिखाया। राजा विराट को चौपड़ का बहुत शौक था वे कंक को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। भीमसेन ने पहलवानी में हद कर दिखाई। कोई पहलवान ही उनके सामने न रहा। वे शेरों से लड़कर उन्हें मार डालते थे। राजा विराट उनपर बड़ा गर्व करने लगे।

इस एक वर्ष के चार महीने बीत जाने पर सती द्रौपदी पर विपत्ति पड़ी। रानी सुदेष्ण का भाई "कीचक" राजा विराट का सेनापति था। वह महल में आने जाने के कारण द्रौपदी पर मोहित हो गया। अज्ञात वास की उल्लेखनीय कथा यहीं से आरम्भ होती है। आगे यही विषय चलता है।

कीचक--वध

एक बार मौका पाकर कीचक ने द्रौपदी को एकान्त में अपना प्रेम प्रगट किया। दासी के रूप में देवी द्रौपदी को बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु वह पराधीन और विवश थी। उसने कीचक को कहा "मैं पाँच गन्धर्वों की पत्नी हूँ, विपत्ति वश आपकी दासी हूँ, यदि मेरे पति यह समाचार पा गये तो विराट

नगरी में अन्धेर हो जायगा। मुझ पर पाप दृष्टि करने वाला जीवित न रहेगा।"

कीचक सती तेज के सामने भयभीत हो गया, परन्तु सर पर मृत्यु सवार थी अतः अपनी वीरता के घमंड में आ गया। वह सब तरह सैरिन्ध्री पर मोहित था, वह जबरन अपना कार्य करने पर तुल गया। सैरिन्ध्री ने अपना धर्म बचाने के लिये उसे बड़े जोर से धक्का देकर पृथ्वी पर गिरा दिया और आप दौड़कर महल से बाहर होकर राज सभा की ओर भागी कीचक भी उसके पीछे २ भागा राज सभा में कीचक ने सैरिन्ध्री का बड़ा अपमान किया।

गुप्त वेशी कंक और बल्लभ आदि वहां बैठे थे, पर उनका वश नहीं चलता था, प्रगट होना न था। अपना २ खून पीकर रह गये। अन्त में युधिष्ठिर ने इशारे से द्रौपदी को कह दिया कि "जा महल में जा, तेरे गन्धर्व पति तेरी रक्षा करेंगे।" द्रौपदी इशारा पाकर महल में चली गई। कीचक सेनापति था, विशेष पूछ ताछ नहीं हुई। वह बहाना करके और दासी को कसूरवार बताकर बचगये, पर पाण्डवों को बरदाश्त न हुआ, वे मन ही मन दुःखी होते अपने २ स्थान पर गये।

रात को द्रौपदी ने जाकर सोते हुये भीमसेन को धिक्कारना शुरू कर दिया। वे मारे क्रोध के उठ बैठे और बोले "द्रौपदी! हमें प्रगट नहीं होना है, यही दुःख है नहीं तो अभी तक कीचक जीता न रहता तुम जाओ। जब कीचक आवे, तो उसे किसी बाहरी स्थान में लेजाओ, मैं वहां तुम्हारी कामना पूर्ण करूंगा और पापी को दंड दूंगा।"

द्रौपदी चली गयी। दूसरे दिन जब कीचक आया, तो द्रौपदी ने उसे किसी दूसरे स्थान में मिलने को कहा। कीचक बड़ा प्रसन्न होगया और उसने एक स्थान का पता बताया और वहीं मिलने का वचन देकर चला गया।

बताये स्थान का पता द्रौपदी ने भीम को बता दिया। भीमसेन समय के पहले ही वहां जाकर छिप रहे। जब द्रौपदी पहुंची, तो भीमसेन ने सब कुछ समझा दिया वह कीचक की राह देखने लगी। कीचक खूब ठाठ से वहां पहुंचा। द्रौपदी ने उसे बैठने का इशारा किया और आप बाहर चली गयी। कीचक उस समय द्रौपदी की सुन्दरता की तारीफ करता हुआ बड़ बड़ा रहा था, भीमसेन को यह सुन कर क्रोध आ गया, वे उठ खड़े हुए और कीचक को पकड़ लिया।

क्रोध में आकर भीमसेन ने उसको ऐसा पटका कि हड्डी पसली तक चूर २ हो गई। लाश फेंककर भीम चल दिये, द्रौपदी ने हल्ला मचा दिया। सारे नगर में हल चल सी पड़गई कि द्रौपदी के गन्धर्व पति ने राज्य के मुख्य कर्ता महाबली कीचक को मार डाला है।

राजा विराट भी डर गये कि सैरिन्ध्री के मारे तो प्रजा डर गई इसे निकाल ही देना चाहिये। राजा ने सुदेष्णा से कहा–उसने द्रौपदी को बरखास्त करने की आज्ञा दी। द्रौपदी ने रानी से कहा "थोड़े दिन हमें और रक्खो फिर मेरे पति आकर लेजायंगे। आप भयभीत न हों, यदि मेरे धर्म पर कोई घात न करने पावेगा। तो मैं कभी राज्य का भला भी कराती रहूँगी। मेरे गन्धर्व पति बड़े बलवान् हैं।" रानी ने फिर सैरिन्ध्री को रख

लिया परन्तु साथ ही उसका मान भी बहुत बढ गया। सभी उसका पूर्ण आदर करने लगीं सत्य के सामने सभी दहल गयीं। होते २ द्रौपदी राज महलों में माननीय होने लगी, क्यों कि सबको भास होगया कि हमारे पास एक नारी रत्न है।

राजा विराट पर चढ़ाई

कौरवों को जब मालूम होगया कि पाँडव गुप्त हो गये, तो उन्हें खोज निकालने के लिये उनको चिन्ता होने लगी। बड़े २ नामी गुप्तचर भेजे गये, पर उनका पता कोई न पासका। अन्त में सब लाचार होकर लौट आये।

कौरवों की सभा में यह विषय उपस्थित हुआ कि पाण्डवों के तेरह वर्ष पूरे होते ही वे एक हमपर आक्रमण करेंगे। अब हमें अपनी पूरी शक्ति से तैयार रहना चाहिये। इसी तरह किसी ने कुछ कहा, यहां तक कि सब में कितनों ने ही पांडवों को मरे हुए समझ लिया, क्यों कि पता चला ही नहीं।

इस सभा में एक महाबली राजा त्रिगर्त्तराज भी था जो कई बार राजा-विराट पर चढ़ाई कर चुका था, परन्तु कीचक के कारण उसे परास्त होना पड़ा था। अब कीचक की मृत्यु सुनकर उसने दुर्योधन से कहा "विराट की राजधानी पर सब मिलकर आक्रमण करें, तो एक भारी राज्य मिल जाय और अपनी शक्ति भी बढ़े। अब अपनी शक्ति बढ़ाना ही योग्य है। कर्ण ने इसका समर्थन किया और मत्स्य राज पर चढ़ाई करने की तैयारियां होने लगीं।

एक ओर से त्रिगर्त्तराज पहिले अपनी सेना लेकर मत्स्य राज्य पर चढ़ा। उसने घोर युद्ध करके विराट की गौओं का हरण

किया, यहां तक कि त्रिगर्त्तराज को भी बन्दी बनाया। युधिष्ठिर ने अपने स्वामी की यह अवस्था देखकर सहायता के लिये भीम से कहा। भीम उस क्षण धनुष बाण लेकर त्रिगर्त्तराज के पीछे चले। कुछ ही दूर त्रिगर्त्तराज को देख भीम ने ललकारा। युद्ध छिड़ गया भीम ने तहस नहस करना शुरू किया, यहाँ तक कि त्रिगर्त्तराज तक को उठा कर युधिष्ठिर के सामने लाकर खड़ा कर दिया। अन्त में त्रिगर्त्तराज क्षमा मांग कर छूटा और फिर कभी चढ़ाई न करने की प्रतिज्ञा कर चला गया।

राजा विराट इस विजय पर बड़े प्रसन्न हुए और पांडवों को बड़े सम्मान से रखने लगे। दूसरी ओर से दुर्योधन, कर्णआदि ने चढ़ाई करके विराट राज की गौयें हरण कीं। जब इसका पता लगा तो राजा विराट फिर चिन्तित हुए। पहले-पहल राजकुमार उत्तर को सामना करने की आज्ञा विराट ने दी। उत्तर ने एक योग्य सारथी मांगा। सारथी कोई योग्य नजर न आया, तो चिन्ता करते हुए राजकुमार महल में गये। रानी ने चिन्ता का कारण पूछा, उत्तर ने सब कहा। इसी समय पास बैठी सैरिन्ध्री ने कहा "राजकुमार! आपके यहां जो बृहन्नला नृत्तकी है वह रथ चलाने में अद्वितीय है, आप उसे ले जांय तो विजयी होंगे।" इस पर सब औरतें हंस पड़ी कि "एक जनाना नृत्तक भला रथ चलाना क्या जाने?" इस पर सैरिन्ध्री ने कहा आप उनको ले जाइये फिर देखिये क्या होता है?

उसने पाँडवों का रथ हांका हुआ है और विजयी हुआ है। उत्तरने सोच समझ कर अपनी बहन उत्तरासे कहा कि "तुम अपनी नृतकी को तैयार कर दो, तुम्हारी बात वह मान लेगी।" उत्तरा

ने उससे पूछा और जब वह कुछ तैयार हुआ तो राजकुमार के पास ले गई। बृहन्नला को देखकर उत्तर ने उसे तैयार होने को कहा और उसे युद्ध का बाना पहनाया।

पथ पर सवार होकर जब उत्तर कौरव सैनाके सामने पहुंचा तो उसके देवता ही कूच कर गये और वह डर गया। यहां तक कि वह रथ से कूदकर भागने लगा। अर्जुन ने भी उसका पीछा किया और पकड़ कर बहुत कुछ लज्जित किया। जब उत्तर किसी तरह न माना तो बृहन्नला ने कहा "अच्छा आप यह रथ हांको मैं युद्ध करूंगा" पर उत्तर को एतबार न आया। अन्त में अर्जुन ने अपना पूर्ण परिचय देते हुए कहा कि "हमारा एक वर्ष व्यतीत होगया है अब हम प्रगट भी होजायें तो भय नहीं। उत्तरने जब वीरवर अर्जुन को पहचाना तो प्रणाम किया और अनुचित व्यवहार की क्षमा मांग कर वह सारथी बना।

अर्जुन पहिले वहीं गये जहां हथियार छिपाये थे, वहाँ से अपने हथियार लेकर वे कौरव सैना के सामने पहुंचे। दुर्योधन और कर्ण ने उन्हें कुछ २ पहचान लिया और आपस में खुशी मनाने लगे कि "चलो समय के पहिले ही अर्जुन पहचाना जाय तो फिर बारह वर्ष को भेजदें।" यह सोच, सबके सब भीष्मपितामह की ओर बढे और उन्होंने उनसे पूछा। भीष्म ने कहा "उनका समय पूरा हो चुका है और अब अपनी खरियत मनाओ। ये जो वीर रथ में बैठा है; वीर अर्जुन ही जान पड़ता है। दुर्योधन तुम हरण की हुई गौओं को लेकर हस्तिनापुर की रक्षा के लिये लौट जाओ बाकी सब वीर इन्हें रोकेंगे चाहे कोई भी हो।"

दुर्योधन सहम गया था और वह भीष्म के कहने पर गौयें

लेकर पीछे लौटा । उसके लौटने की देर थी कि अर्जुन ने अपना
शंख फूंक दिया और दुर्योधन को ही मारने को बढ़े और जाते
हुए युद्ध के लिये अपने गाण्डीव धनुष की टङ्कार की अब जब
दुर्योधन घेरा गया तो सभी इकट्ठे होगये । और पहले आगे ही
तुरन्त द्रोण ने अपना रथ अर्जुन की ओर बढ़ाकर उस वेग से
आते हुए रथ का रास्ता रोका । अर्जुन ने सामने आते ही दो
बाण गुरु द्रोण की तरफ चलाये, जिनमें एक तो उनके चरणों के
पास पहुंचकर रहगया दूसरा उनके कान के पास से होता हुआ
निकल गया । द्रोण समझ गये कि "यह महावीर मेरा प्रिय शिष्य
अर्जुन ही है, क्योंकि पहले बाण से उसने मेरे चरणों में प्रणाम
किया है और दूसरे से कुशल पूछी है जो बाण मेरे कान के पास
से निकला है । वे शिष्य को देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए । इस
समय वे अपने कर्त्तव्य पर खड़े थे, उधर अर्जुन भी अपने स्वामी
के लिये आये थे, अतः युद्ध तो होना ही था परन्तु देखना यह
है कि एक दूसरे के शत्रु होकर सामने खड़े हैं फिर सम्मान गुरु
का किस प्रकार अर्जुन ने किया, फिर गुरु प्रसन्न क्यों न हों । वे
अब अपना वार करने लगे और अर्जुन भी वार करते हुए रथ
बढ़वाकर दुर्योधन की ओर चले ।

रास्ते में कर्ण सामने आया जो कौरवोंकी ओर सबमें मान-
नीय महावीर था । कर्णने अर्जुन के लिये तो असुर व्रत तक
कर रक्खा था, वह अपनी पूरी शक्ति से लड़ने लगा । परन्तु
वह अभी तक अर्जुन को पहचान न पाया । अर्जुन के मन में
भी कौरवों के शिर-धड़ को मिटानें की इच्छा थी, अतः वे उसी
से जूझ गये । इस घोर युद्ध में अर्जुन ने उसे अङ्ग २ से घायल

कर दिया और कर्ण जान बचा कर भागे।

कर्णके बाद कृपाचार्य सामने आये और अपना वार करने लगे, अर्जुन ने उनके सब शस्त्र टुकड़े २ कर डाले, यहां तक कि रथ के घोड़ों को मार कृपाचार्य को घायल कर रथ से नीचे गिरा दिया।

कृपाचार्य के बाद द्रोणाचार्य सामने पहुंचे और गुरु चेले की ठन गई। इस भयङ्कर युद्ध को सभी वीर देखने लग गये। अर्जुन ने बड़ी तपस्या से महास्त्र पाये थे और इन्द्रपुरी में रहकर इन्द्र के दिये अस्त्रों का काम सीखा था। वे इतने निपुण और फुर्तीले थे कि द्रोण घबरा गये। उनका रथ तीरों से ढक गया। यह देख खलबली सी पड़ गई और अश्वत्थामा आगे बढ़ गये इससे द्रोण अपना रथ पीछे ले गये।

अश्वत्थामा और अर्जुन भी भिड़े, जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्त में उनके अस्त्रशस्त्र ही खतम होगये। इस बीच में कर्ण फिर सुस्ता कर क्रोध में भरे आ पहुंचे और अर्जुन पर टूट पड़े। एक बार फिर घोर युद्ध हुआ, जिसमें अर्जुन ने एक बाण उसकी छाती में मार कर उसे रथ से नीचे गिरा दिया।

कर्ण की अवस्था देख दुर्योधन भी टूटा परन्तु महावीर ने उसे सेना सहित मार भगाया और अन्त में भीष्म पितामह की ओर बढ़े। अब दादा और पोता भिड़ गये जो प्रख्यात महावीर थे। यह युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ, जिसमें अर्जुन ने एक बाण उनकी छाती में मार कर उन्हें बेहोश कर दिया। अब कौरव सेना में हाहाकार मच गया और सबके सब जान लेकर भाग गये।

कौरवों को घेर कर अब विजयी अर्जुन फिरे तो तो राजकुमार उत्तर ने उनके चरण पकड़ लिये और भूरि २ प्रशंसा की। अर्जुन ने उत्तर से सब हाल प्रगट कर दिया था, अतः अब उसे मना कर दिया कि "जब तक मैं न कहूँ हमारा यह प्रगट होना किसी से न कहना।" उत्तर ने मान लिया और राजधानी की ओर बढ़े।

"अकेले उत्तर ने दिग्विजयी कौरवों को मार भगाया" यह समाचार पाते ही राजा विराट फूले न समाये। युवराज का स्वागत बड़े समारोह से किया गया और बृहन्नलाका बहुतही सम्मान हुआ।

शुभ विवाह

राजा विराट की राज सभा में एक दिन पांडवों ने अपने आप को प्रगट कर दिया। जब राजा विराट ने यह जाना तो वे इतने प्रसन्न हुए कि विस्तार करना कठिन है। विराट ने युधिष्ठिर को गले लगाया और न जानने के कारण किये गये व्यवहारों की क्षमा माँगी। पांडवों ने उन्हें सब तरह सन्तुष्ट कर दिया, परन्तु राजा विराट को अभी शान्ति प्राप्त न हुई। वे मारे प्रसन्नता के पांडवों से अपना घनिष्ठ सम्बंध करके ही अपनी प्रसन्नता का परिचय देते हुए बोले—"महावीर अर्जुन को मैं अपनी कन्या रत्न देना चाहता हूँ, जिन्होंने अकेलेही बड़े महावीरों को मार भगाया और राज्यकी रक्षा की।"

उत्तर में अर्जुन ने कहा—"महाराज! राजकुमारी उत्तरा मेरी शिष्य है, अतः वह मेरी कन्या के बराबर है। यदि आपकी

ऐसी ही कृपा है तो उत्तरा का विवाह सुभद्रा के लाल अभिमन्यु से कीजिये तो मैं इसे यूं भी पुत्री समझूं।" अर्जुन का यह धर्ममय विचार सुनकर सभी प्रसन्न हो उठे। राजा विराट ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक यह स्वीकार कर लिया और युधिष्ठिर ने भी आज्ञा देकर राजा विराट को गले से लगा लिया। यह एक अद्भुत समय था, जिसका विस्तार करना कठिन है।

यह सब हो चुकने पर सब तरफ दूतों को भेजा जाने लगा और यह समाचार दिया गया कि "पाँडव अपना समय व्यतीत कर सत्यरूप से प्रगट होकर नगरी में निवास करते हैं। अमुक तिथि में महावीर अर्जुन के सुपुत्र अभिमन्यु का विवाह राजकुमारी उत्तरा से होगा।" अब द्वारका में भी यह समाचार श्री कृष्ण को पहले भेजा गया।

श्रीकृष्ण यह शुभ समाचार सुनते ही महलों में दौड़े सारा हाल बहन सुभद्रा तथा अपनी पटरानियों से कहा। फिर क्या था? आनन्द सागर उमड़ आया। सारा परिवार ही शुभ विवाह में जाने के लिये तैयार होगया। और शीघ्र ही सारा प्रबन्ध करके बरात बिदा हुई। विराट नगरी में बड़े ही समारोह से स्वागत किया गया।

श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुन तथा पांडवों से मिलकर गद्-गद् प्रसन्न होगये। सुभद्रा ने बिजयी स्वामी को पाकर कितना आनंद प्राप्त किया, द्रौपदी आदि भी परस्पर मिलकर किस प्रकार आनंदित हुई इसका विस्तार लेखन शक्ति के बाहर है।

धीरे २ द्रौपदी के पिता राजा द्रुपद तथा सभी मित्र तथा राजे आ गये और शुभ मुहूर्त्त में वीर अभिमन्यु तथा उत्तरा का

विवाह बड़ी ही धूमधाम से हुआ। राजा विराट ने बहुत धन, रत्न, हाथी, घोड़े तथा अगणित गायें, दास-दासियां दहेज में दिये, जिससे पांडव भी संतुष्ट होगये। यह उत्सव बहुत दिन तक मनाया गया, इसके बाद सबकी विदायगी हुई।

उद्योग--पर्व

सन्देश और रण-निमन्त्रण

विवाह के बाद राजा विराट के यहां एक परामर्श सभा बैठी जिसमें यह विचार स्थिर किया गया कि पांडवों का आधा राज्य कौरवों से किसी तरह वापस लिया जाय। पहले दूत भेज कर दुर्योधन आदि को समझाया जाय, जिसमें वे न्यायोचित कार्य करें और भाइयों से विरोध न करें।

पहले पुरोहित को ही दूत बनाकर हस्तिनापुर भेजा गया। दूतने धृतराष्ट्र की राज-सभा में जाकर न्यायपूर्ण सन्देश कह सुनाया। धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, विदुर आदिने पांडवों के इस संदेश को उचित समझा और वे चाहते थे कि पांडवों का हक उन्हें दिया जाय और किसी प्रकार विरोध न रहे, परन्तु दुर्योधन की चाण्डाल चौकड़ी ने राज्य तो क्या, सुई की नोंक के बराबर पृथ्वी देना भी स्वीकार न किया।

इस विषय पर भावी अनर्थ तथा महायुद्ध का उल्लेख कर भीष्म आदि ने बहुत कुछ उपदेश किये, परंतु सब निष्फल हुए, क्योंकि दुर्योधनादि को यह गर्व था कि "हम दिग्विजयी होगये, राजा सब हमारी ओर हैं, युद्ध करके भी पांडव हमें जीत नहीं सकते।"

सत्य ही कहा है "विनाशकाले विपरीत बुद्धि" दूत हर तरह

उद्योग करके निराश होगया और अन्त में लौट गया। जब पांडवों को संधिकी आशा दिखाई न दी तो फिर परामर्श हुआ और युद्ध के विना सफलता प्राप्त होती न देखकर चारों ओर युद्ध में सम्मिलित होने के लिये सब राजाओं को निमन्त्रण भेजा गया। राजा विराट राजा द्रुपद आदि मित्र तथा संबंधियों की सेना तो तैयार होगई और युद्ध की तैयारी अन्दर ही अन्दर होने लगी।

उधर दुर्योधन ने भी चारों ओर दूत भेज दिये और बड़े जोर-शोर से वह युद्धकी तैयारी करने लगा। वृद्धजन आदि से ही इनके राज्य में थे और राज्य के आश्रित थे, उन्हें इस अन्याय पर बड़ा दुःख हो रहा था. परंतु वे सभी कर्तव्य-पाशमें बंधे थे, सभी भावी विनाश का उल्लेख कर धृतराष्ट्र को समझाते थे, पर पुत्र की मायामें वे आंखों के अतिरिक्त हृदय के भी अंधे होगये।

जो सेना उपस्थित थी, वही लेकर पांडव विराट नगरी से प्रस्थान कर राज्य सीमा के निकट पहुंचे और वहीं अपने खेमे गढ़वा दिये। जो राजा सत्य पंथावलम्बी थे उन्होंने उधर अपना बल लगाने का संदेश भेजा। मतलब यह है कि दोनों ओर की तैयारी बड़े जोर से होने लग गई, एक ओर दूसरे के पक्ष को तोड़ने का भी यत्न खूब होने लग गया।

अब दोनों पक्षका ध्यान भगवान श्रीकृष्ण की ओर गया। उधरसे दुर्योधन और इधर से अर्जुन द्वारिका की ओर रवाना हो गये। दुर्योधन ने अर्जुन से पहले पहुचने की ठानी और रथ बढ़ाया, परन्तु पहुंचे भी कुछ देर आगे पीछे। जिस समय श्री कृष्ण के भवन में दुर्योधन पहले पहुंचा तो समाचार मिला कि

वे सो रहे हैं। दुर्योधन पहले आने के कारण प्रसन्न होता हुआ श्रीकृष्ण के शयन गृह में गया और पलंग के सिरहाने जाकर बैठ गया। थोड़ी देर में अर्जुन भी पहुंचे वे श्रीकृष्ण के पैरों की ओर रक्खा हुई एक चौकी पर बैठ गये।

श्रीकृष्ण की आँख खुली तो सामने अर्जुन दिखाई दिये। वे अपने प्रिय सखा को देखते ही प्रसन्न चित्त से उठ बैठे और फिर उन्होंने दर्योधन को देखा। कुशल क्षेम पूछने के बाद कृष्ण जी से आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने कहा "वासुदेव! मैं प्रथम ही आया हूँ और आपको रण—निमंत्रण देने आया हूँ, अतः आप को मेरा पक्ष ग्रहण करना होगा।"

श्रीकृष्ण समझ ही गये थे कि अब कौरवों तथा पांडवों में विनाशकारी युद्ध हुए बिना न रहेगा। उन्होंने विचार करके उत्तर दिया "मेरे लिये आप दोनों ही बराबर और माननीय तथा आत्मीय हैं। मैं सत्य का पक्षपाती हूँ अतः अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये मैं आप दोनों को सहायता देना चाहता हूँ। एक ओर मेरी दस लाख सेना है, दूसरी ओर मैं हूँ, अतः जो सेना चाहे वो सेना ले, जो मुझे अकेले को चाहे वो मुझे ले परन्तु मैं युद्ध में शस्त्र न उठाऊंगा।"

दुर्योधन ने कहा "पहले मैं आया हूँ अतः पहले मुझे सहायता मिलनी चाहिए।"

कृष्ण ने कहा—"मैंने आँखें खुलते ही अर्जुन को देखा है, अतः पहले अर्जुन सहायता का एक पक्ष मांगेगा।"

दुर्योधन गर्व में भर कर सिरहाने बैठा था, पैर की तरफ बैठना वह अपमान समझता था, बल्कि अर्जुन को पैरों की ओर

बैठे देख कर वह उसे हीन-हृदय समझ रहा था। पर जब उसने यह सुना कि श्रीकृष्ण की नजर पहले अर्जुन पर पड़ी तो मन ही मन पछताने लगा पर अब क्या हो सकता था ?

पहले अर्जुन से वासुदेव ने पूछा "सखा ! तुम क्या चाहते हो ?" अर्जुन ने कहा "मैं तो अकेले आपको ही चाहता हूँ आपकी सेना नहीं।" दुर्योधन में मानो जान पड़ गई वह तुरन्त सेना मांग बैठा। श्रीकृष्ण ने उसी समय सेना के लिये आज्ञा दे दी। दुर्योधन अर्जुन को मूर्ख समझकर उसी समय उठ खड़ा हुआ कि उसने अकेले श्रीकृष्ण को मांगा। वह दो चार मुंह देखी बातें करके वहीं से विदा हुआ, परन्तु अर्जुन बैठे रहे।

दुर्योधन के जाने पर श्री कृष्ण ने कहा—"सखा अर्जुन ! तुमने मेरी बलशाली दस लाख सेना छोड़कर मुझे ही क्यों मांगा ?"

उत्तर में अर्जुन ने कहा—"वासुदेव ! मेरे पक्ष में आपका केवल खड़ा रहना ही पांडवों की विजय है। दुर्योधन ने आपको और आपकी माया को अभी तक नहीं पहचाना। यद्यपि आप मेरे इस कथन को केवल प्रशंसा ही समझेंगे परंतु मैं सत्य विश्वास के बल पर आपको ही सर्वो सर्वा समझता हूँ। आप केवल हमें अपनी अकाट्य युक्तियों द्वारा ही विजयी बनायेंगे, मैं रण-भूमि में भी एक मात्र आपका दर्शन करता हुआ शत्रुओं का संहार करूंगा, अतः आप मेरे सारथि बनें बस मेरी तो यही प्रार्थना है।"

मायामय अपने सखा के इस सत्य विश्वास तथा आदर्श भक्ति भाव को देखकर प्रसन्न होते हुए बोले—"सखा ! तुम्हारे इस प्रेम-भाव और आत्म विश्वास में ही ईश्वर कुछ मतलब रखता

है। जो हो, मैं प्रसन्नता पूर्वक तुम्हारा सारथी होना स्वीकार करता हूँ।"

दोनों सखा वहां से बातें करते-करते उठे निवृत्त होकर अर्जुन के साथ जाने की तैयारी की और शीघ्र ही पांडव शिविर में जा पहुंचे। पहले तो सेना-सङ्गठन किया गया और मित्र राजाओं के सत्कार का पूरा प्रवन्ध किया गया।

पांडवों के पक्ष में राजा विराट, द्रुपद, सात्यकि, चंदेरीराज शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु, जरासिंध-पुत्र सहदेव, महावीर पांडव आदि अनेक राजा थे। राजा शल्य अपनी सेना सहित पाँडवों की ओर आये थे, क्योंकि वे उन्हें चाहते थे और थे भी मामा, परंतु वे दुर्योधन के कपट जाल में रास्ते से ही फंस गये। फंस तो गये, परंतु वे पश्चाताप करते हुए पांडवों के पास गये और कहा—"मैं रास्ते में ही आपका प्रबंध समझ कर ठहर गया और सेना सहित मेरा बड़ा सम्मांन हुआ, परंतु अब यह पता लगा कि यह सब सम्मान दुर्योधन का था, तो आतिथ्य-स्वीकार कर चुकने के कारण मुझे उसका ही पक्ष लेना पड़ा, अब जैसा कहो किया जाय।" इस पर पांडवों ने उनसे यह वचन लिया कि यदि "कर्ण किसी समय सेनापति बनाया जाए तो आप उनके सारथि बनकर अर्जुन को विजय दिलायें।" शाल्य यह स्वीकार करके चले गये।

बाकी राजगण दुर्योधन के पक्ष में थे, जैसे—भगदत्त, भूरि-श्रवा, भोजराज, शल्प, कृतवर्मा आदि। ये सब भी अपने पूरे बल के साथ कौरवों में पहुंच गये और तरह-तरह की तैयारियां तथा परामर्श करने लगे। सब कार्य बड़े उत्साह से होने लगा।

कौरवों की ओर ग्यारह अक्षौहिणी और पांडवों की ओर सात अक्षौहिणी सेना तैयार होगई। एक अक्षौहिणी सेना का परिणाम इस प्रकार जानना चाहिये–(२१८७०) इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ। इतने ही हाथी (१०६३५०) एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास सैनिक पैदल और (६५६१०) पैंसठ हजार छै सौ दस घोड़े सवार।

श्री कृष्ण का दूत कार्य

पूरी तैयारी हो जाने के बाद पांडवों ने परामर्श-सभा की, जिसमें धर्मराज युधिष्ठिर ने भावी विनाशकारी युद्ध में अपने ही आत्मियों का नाश होना विचार कर एक बार फिर सन्धि की चेष्टा करने का विचार प्रगट किया, जिसमें सर्व सम्मति से परम नीतिज्ञ भगवान वासुदेव को ही कार्य का भार दिया गया और उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

श्रीकृष्ण ने कहा–आशा तो नहीं है कि यह विनाशकारी युद्ध रुके, परंतु एक बार अन्तिम चेष्टा करने के लिये मेरा ही हस्तिनापुर जाना योग्य है। सम्भव है कुटिल दुर्योधन अपनी राह पर आ जाय।

पांडवों से विदा होकर जब श्रीकृष्ण दूत बनकर चलने लगे, तो आंखों में आंसू भरकर द्रौपदी ने अपने खुले हुए केश दिखाते हुये कहा–"मधुसूधन! मेरे अपमान का ध्यान भूल न जाना। मैंने कौरव सभा के अपमान के बाद यह केश खुले ही रक्खे हैं, उसका यही मतलब है कि मेरे केश पकड़ने वाले दुःशासन के रक्त से मेरे बाल सींचने की प्रतिज्ञा भीमसेन ने की थी वे सब तो आप सन्धि के लिये भेज रहे हैं, परंतु मेरे हृदय में बदला लेने का कीना भरा हुआ है। अब मेरी इच्छा पूर्ण करना आप ही के हाथ में है।

श्रीकृष्णने उत्तर में कहा—"कल्याणी ! चिन्ता न कर, तेरा मनोरथ तेरे पति अवश्य ही पूर्ण करेंगे । मैं सन्धि के लिये जाता हूँ, पर भारत में महाभारत का युद्ध हुए बिना न रहेगा, क्योंकि अब द्वापर का अन्त है और यह अन्त सभीका अन्त समझना चाहिये । पाँडव अब अपना काल उतने ही सुख से व्यतीत करेंगे, जितना कि कष्ट उठाना पड़ा है, क्यों कि सत्य पथ महान कठिन है । सत्य पथ का अन्तिम स्थान परमानन्द पद या मोक्ष है । सत्य मार्ग में परमात्माने ऐसी ही शक्ति रक्खी है कि हीन हृदय तुरन्त ही सत्य पथ में कहीं न कहीं ठोकर खाकर विमुख हो जाते हैं, परन्तु जो अपने विश्वास पर दृढ़ रहते हैं, वही अपना उद्धार कर सकते हैं । अब तुम्हारे सुखों का दिन निकट आ गया है, धैर्य पूर्वक उस समय की प्रतीक्षा करो ।

द्रौपदी परम सन्तुष्ट हुई और श्रीकृष्ण बिदा हुए । हस्तिनापुर पहुंच कर कौरवों की राज सभा में श्रीकृष्ण ने संधि की चर्चा ऐसे ढंग से की कि, दुर्योधन, कर्ण शकुनी तथा दुःशासन आदि की मण्डली को छोड़ सभी पाण्डवों का राज्य लौटा देने को तैयार हो गये । उसी समय दुर्योधन आदि उठ कर चल दिये और पहले कृष्ण जी को ही अपना बन्दी बना लेने के लिये सलाह करने लगे । एकान्त में जाकर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से साफ कह दिया कि, हम पांडवों को राज्य न देंगे चाहे जो हो ।

धृतराष्ट्र दूसरे दिन फिर उलट पुलट की बातें करने लगे । भीष्म तथा बिदुर ने खूब समझाया, अन्त में धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण को दुर्योधन के पास समझाने को भेजा । वे दुर्योधन के पास पहुंचे और समझाने लगे । फल यह हुआ कि वे जमीन की पूछें

तो दुर्योधन आसमान की कहे । होते २ दुर्योधन ने राज्य देने से साफ इन्कार कर दिया ।

श्रीकृष्ण ने भी फिर साफ कह दिया कि दुर्योधन ! तुम मेरे समझाने पर भी नहीं माने, तो अब युद्ध के लिये तैयार हो जाओ, आगामी सप्ताह में युद्ध आरम्भ होगा ।"

श्रीकृष्ण यह कह कर फिर धृतराष्ट्र की ओर गये और युद्ध की घोषणा कर दी । जब वे बिदा होने लगे, तो चाण्डाल चौकड़ी आपस में काना फूंसी करने लगी । भीष्म को और विदुर को यह पता लग गया था, और श्रीकृष्ण भी विदुर जी के यहां भोजन करने गये, तो कौरवों का षडयन्त्र सुन चुके थे । वे एक दम गरज कर बोल उठे—"मुझे कैदी बनाने का साहस करने वालों को अपना आगा पीछा विचार लेना चाहिये । मुझे कैद करना कुछ खेल नहीं है । यदि भला चाहते हो, तो मुझे दूत बना रहने दो, अन्यथा पांडव तो पीछे युद्ध करेंगे पर मैं अकेला ही तुम्हें करनी का फल देने को तैयार हो जाऊंगा ।"

श्रीकृष्ण को क्रोध में आते देख सभा भर कांप उठी, भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्र ने दुर्योधन आदि को बहुत फटकारा और श्रीकृष्ण को शान्त करने की चेष्टा होने लगी । वे अब वहां ठहर न सके और सभा बाहर हो गये । फिर कुन्ती आदि से मिले और यात्रा की तैयारी की ।

मुंह देखी करने के लिये कर्ण उन्हें रथ तक पहुंचाने गया श्रीकृष्ण ने उसे उसी समय एकान्त में ले जाकर कहा—"कर्ण तुम वास्तव में पाण्डवों के बड़े भाई और कुन्ती के पुत्र हो, तुम्हें उनका साथ देना चाहिये ।" श्रीकृष्ण ने विस्तार पूर्वक भी कर्ण

की जन्म कथा उसे सुना दी, जिसे सुनकर कर्ण सोच में पड़ गये। अन्त में कर्ण ने कहा—"अब मैं अपना आपा जान गया, परन्तु जब माता कुन्ती ने जन्म देते ही त्याग दिया, सूतने मुझे पाला, कौरवों ने मुझे इस पद तक पहुंचाया है, तो मैं पक्ष तो कौरवों का ही ग्रहण करूंगा।"

श्रीकृष्ण निराश हो गये और उसे पाण्डवों के प्रति कुछ नम्र करके विदा हुए। कर्ण यथा स्थान चले गये।

कर्ण और कुन्ती

कुन्ती देवी ने विचारा कि—"अब महायुद्ध होगा। कौरवों में महावीर कर्ण पर भरोसा है और वह भी पांडवों की तरह मेरा ही पुत्र है। इस युद्ध में वह अपने ही सगे भाइयों का खून बहायेगा, तो मैं कैसे सहन कर सकूं!"

कुन्ती उपरोक्त विचार करती हुई कर्ण के पास गई। कर्ण ने उनके चरणों में प्रणाम किया। कुन्ती ने उसके जन्म का उल्लेख करते हुए भाइयों की सहायता के लिये कहा। कर्ण ने उस समय जन्म काल के त्याग का उल्लेख कर लज्जित किया परन्तु अन्त में माता का सम्मान करने के कारण कर्ण ने कहा "अच्छा माता! जब तुम आज मेरे सन्मुख आई हो तो सुनो! मैं अर्जुन को छोड़ कर और किसी को युद्ध में न मारूंगा या अर्जुन न रहेगा या मैं न रहूँगा। तुम्हारे पांच पुत्र बने रहेंगे।"

कुन्ती देवी यही कुशल समझ कर लौट गई। कर्ण जब अपनी मंडली में पहुंचे, तो उन्होंने सारा हाल दुर्योधन से कहा। दुर्योधन यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ कि उसने हमारा पक्ष नहीं छोड़ा।

युद्ध की तैयारी

श्रीकृष्ण जब लौटकर पांडवों के पास गये और सारा हाल कहा, तो यह महायुद्ध निश्चय हो गया। पांडवों ने सेना को तैयार करके कुरुक्षेत्र के मैदान में भेजनी शुरू कर दी। हिरण्यवती नदी के किनारे पर सेना ने अपना मोर्चा लगा दिया।

उधर कौरवों ने जब यह समाचार पाया, तो उन्होंने अपनी सेना में भी कूंच का डंका बजा दिया। सेना कुरुक्षेत्र की ओर चली। चलने के समय दुर्योधन ने भीष्म से सेना सचिव होने की प्रार्थना की। भीष्म ने कहा—"मेरे लिये कौरव और पाँडव बराबर हैं मैं सेना सचिव बनता हूँ और युद्ध भी तुम्हारी ओर से करूंगा, परन्तु मैं पांचों पांडवों को न मारूंगा। यूं मैं उनके पक्ष के एक हजार वीर प्रतिदिन मारूंगा।" दुर्योधन ने भी यह बात मान ली। इसके बाद वे सारी सेना के नायक बनाये गये और सेनापतियों का पद क्रमशः द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, सुदक्षिण, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, शकुनि तथा कर्ण को दिया गया, जिससे अपने अपने भाग का संचालन करें।

भीष्म पितामह को सेना का नायक होते देखकर कर्ण जल उठा। उसने सेनापति का पद नहीं लिया और दुर्योधन को साफ साफ कह दिया कि "जब तक भीष्म न मरेंगे, मैं युद्ध में शस्त्र न उठाऊंगा।" दुर्योधन कर्ण की यह प्रतिज्ञा सुनकर लाचार हो गय।

उधर पांडवों की समस्त सेना के नायक अर्जुन बनाये गये और मोर्चे बन्दी बड़ी दृढ़ की जाने लगी।

युद्ध के इसी समय में संयोग से महामुनि वेदव्यास हस्तिनापुर

आये। जब धृतराष्ट्र से मिलने गये, तो उन्होंने धृतराष्ट्र को चिन्तित देखा और कारण पूछा। धृतराष्ट्र ने कहा "मैं अन्धा हूँ, मुझे युद्ध का परिणाम कैसे ज्ञात होगा कि क्या हो रहा है, मैं इसी चिन्ता में हूँ।

व्यासदेव ने कहा--"यदि तुम घर बैठे युद्ध देखने की इच्छा रखते हो तो मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि दे सकता हूँ। तुम यहीं बैठे युद्ध का दृश्य देखा करोगे।" इस पर धृतराष्ट्र ने कहा--"मैं अपनी आंखों से अपने ही आत्मीयों को कटते-मरते देखना नहीं चाहता पर समाचार चाहता हूँ।" श्रीव्यास देव ने यह सुनकर कहा--"अच्छा मैं तुम्हारे संजय को वर देता हूँ वह गुप्त रूप में दिन भर रणक्षेत्र में रहेगा और जो हाल होगा सन्ध्या समय तुम्हें आकर सुना दिया करेगा। इसे युद्ध में कोई आपत्ति न पड़ेगी।" वह वर संजय को देकर वेदव्यास जी विदा हुए।

अर्जुन--मोह

दोनों ओर की सेनायें एक दूसरे दल के सामने डटकर खड़ी होगयी। कौरव सेना के व्यूह के आगे भीष्म पितामह का रथ था और पांडवों की सेना के व्यूह के आगे अर्जुन का रथ था, जिसके सारथि बनकर स्वयं श्रीकृष्ण बैठे थे।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा--"मधुसूदन! कौरवों के पक्ष में कौन २ से योद्धा रणक्षेत्र में खड़े हैं? मैं उन्हें देखना चाहता हूँ। अब आप एक बार रथ को रणक्षेत्र की ओर आगे बढावें।" यह सुनकर श्रीकृष्ण ने रथ हांका और कौरव सेना के व्यूह के निकट ही सामने की ओर खड़ा कर दिया। अर्जुन ने जब सामने देखा तो श्रीकृष्ण से कहा—"यह युद्ध राज्य की प्राप्ति के लिये

होने वाला है और मरने के लिये, अपने ही भाई-बन्धु, मामा, दादा, गुरू और सब निकट बन्धु सामने खड़े हैं (इनका खून बहाकर मैं त्रैलोक्यका राज्य कभी नहीं चाहता हूँ।" यह कहकर अर्जुन ने अपने अस्त्र-शस्त्र उतार कर जमीन में फेंक दिये।)

अर्जुन को इस प्रकार मोह में पड़े देखकर श्रीकृष्ण ने उपदेश देना आरम्भ किया। यही वह इस समय का उपदेश है, जो श्रीमद्-भगवत् गीता के नाम से संसार में प्रसिद्ध है। यह उपदेश क्या है, यह गीता को सुनकर अपना जन्म सार्थ कीजिये।

श्रीकृष्ण ने उपदेश के अन्त में अपना दिव्य "विराट रूप" दिखाया, जिसका दर्शन कर अर्जुन का उद्धार होगया, मोह दूर होगया और वह अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ होकर बार २ स्तुति करने लगा। श्रीकृष्ण ने अपना रूप संवरण किया और फिर उत्साहित कर वे युद्ध को तैयार हुए।

अब क्या था ? अर्जुन ने अपनी ओर बढ़कर डंका बजवा दिया, जिसकी गरजन ध्वनि सुनकर कौरवों के सेना-नायक भीष्म-पितामह ने भी अपना शंख बजा दिया। दोनों ओर के वीर रणभेरियां सुनकर लड़ने के लिये उछल पड़े और मस्त होकर झूमने और एक दूसरे के आगे बढ़ने लगे।

दोनों की सेनायें जब एक दूसरे के सामने होकर लड़ने के लिए डट गई, तो धर्मराज युधिष्ठिर चुपचाप अकेले ही कौरव सेना की ओर चले। यह देखकर सबके सब विस्मित हो रहे और किसी से कुछ कहते न बना। उधर कौरवों की ओर भी युधिष्ठिर को आते देखकर सब हैरान हो गये।

युधिष्ठिर ने भीष्म के सामने जाते ही उनके पैर पकड़ लिये

और कहा—"दासजी ! हम विवश होकर आपसे युद्ध करने की आज्ञा मांगने आये हैं, अब हमें आज्ञा दीजिये।"

युधिष्ठिर के इस धर्माचरण को देखकर शत्रु भी प्रशंसा करने लगे। भीष्म ने युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए कहा—"पुत्र ! तुम धर्ममूर्ति हो" तुम्हारी विजय हो। तुम्हारे इस आचरण को देखकर हम बड़े प्रसन्न हुए हैं। जाओ अपना कर्त्तव्य पालन करो। हमारा हृदय तुम्हारी ओर है और युद्ध करने के लिये यह शरीर कर्त्तव्य की ओर है। सुनो, हम अपनी इच्छा बिना नहीं मर सकते और हमारे जीते जी तुम विजयी नहीं हो सकते, अतः अब सब मिलकर मुझे मारने की चेष्टा करो। युद्ध के खत्म होने पर भी कभी सन्ध्या समय मिलना।"

भीष्म से आज्ञा पाकर फिर उन्होंने द्रोणाचार्य से आज्ञा माँगी, उन्होंने भी प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और कहा--"पुत्र ! तुम्हारी विजय होगी, जाओ हमें मारने की चेष्टा करो।" इसी प्रकार गुरुजन से आज्ञा लेकर युधिष्ठिर अपनी ओर आगये इसी समय दुर्योधन के एक भाई "युयुत्स" पाँडवों का सत्य पक्ष देखकर उनकी ओर आ गये और उनकी ओर से युद्ध करने को तैयार हुए। युधिष्ठिर ने उन्हें प्रेमालिंगन किया और सहर्ष मिला लिया।

प्रथम दिन

अपने २ रथों पर सब सवार होगये। युद्ध की भेरी फिर बज उठी और दोनों ओर से सेना-नायक अपनी २ सेना लेकर आगे बढ़े। कौरवों की ओर से कुछ सेना लेकर पहले दुःशासन आगे बढ़ा, जिसे देखते ही भीमसेन अपनी सेना सहित उस पर टूट पड़े।

होते-होते सभी में भिड़न्त होगई और सब तरफ घोर युद्ध छिड़ गया। आज युद्ध होते-होते दोपहर होगया, परन्तु किसी की हार-जीत न हुई। अन्त में भीष्म ने पांडवों की सेना के एक कमजोर भाग पर आक्रमण किया, जिस भाग का सेनापति बन-कर महावीर अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु खड़े थे। सबने कमजोर भाग समझ कर धावा किया, परन्तु सिंह के बच्चे ने यह रण-कौशल दिखलाया कि सबके छक्के छूट गये।

इस युद्ध में अभिमन्यु का साला, विराटका पुत्र उत्तर भी था, जो घोर युद्ध करके मारा गया। उत्तर के मरते ही कौरव प्रसन्न हो उठे और पाण्डवों में उदासी छा गई।

युद्ध अभी जारी ही था कि समाचार पाकर पांडव उधर आ गये और घोर युद्ध करके कौरवों को रोकने लगे। सन्ध्या तक आज का युद्ध समाप्त होगया और दोनों ओर की सेना अपने शिविरों में चली गई। युद्ध बन्द होगया।

पांडवों की ओर उत्तर के मरने से शोक छा गया और युधिष्ठिर पहले दिन की हार से चिन्तित हो उठे। इस पर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और अनेक प्रकार के उपदेश देकर उन्होंने सबको दूसरे दिन के लिये उत्साहित किया। इतने में रात्रि होगई, तब सबने यथा स्थान जाकर आराम करने का प्रबन्ध किया।

दूसरे दिन

दूसरे दिन भी घोर युद्ध आ उपस्थित हुआ। भीष्म आदि ने अगणित सेना का संहार किया। दोनों ओर की घोर-घमसान लड़ाई में पृथ्वी रक्त-रंजित होगई, सारे दिन घोर युद्ध हुआ और सन्ध्या

समय बन्द हो गया। आज के युद्ध में पांडवों ने अच्छी वीरता दिखाई परन्तु किसी की ओर कोई खास हार-जीत नहीं हुई।

तीसरे दिन के युद्ध में भी दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ और दोनों ओर की बहुत सेना, रथ, हाथी, घोड़े का नुकसान हुआ। श्रीकृष्ण के उत्साहित करने से आज अर्जुन ने विकट युद्ध किया था। अतः संध्या होते-होते अर्जुन आदि महावीरों ने कौरवों को मार भगाया। इसके बाद युद्ध बन्द हुआ और सब यथा स्थान गये।

इसी प्रकार आठ दिन तक युद्ध होता रहा और दोनों ओर से एक दूसरे पक्ष को हानि पहुंचाई गई, परन्तु जीत पांडवों की ही रही, जिससे कौरव दल में उदासी छा गई। दुर्योधन आदि सब घबरा गये और युद्ध बन्द होने पर किसी तरह विजयी होने का परामर्श करने लगे। कर्ण ने अपने समय में इसका बदला चुकाने की प्रतिज्ञा की, तब सब शान्त हुए और तैयारी तरह २ की सोची जाने लगीं।

प्रतिज्ञा भंग

नवें दिन फिर घोर युद्ध हुआ। इस दिन अर्जुन ने दुर्यो-धन को घायल कर रथ से नीचे गिरा दिया। यह देख भीष्म बड़े क्रुद्ध हुए और अर्जुन पर भारी आक्रमण किया, जिससे अर्जुन भी बेहोश हो गये।

अर्जुन की यह अवस्था देख श्रीकृष्ण को भी क्रोध आ गया और वे रथ से नीचे कूद पड़े। नीचे उतरते ही उन्होंने रथ का एक पहिया उठा लिया और भीष्म की ओर झपटे। यह देखकर कौरव कांपने लग गये, परन्तु भीष्म ने अपने हथिउनका

रखकर श्रीकृष्ण के आगे सर झुका दिया और कहा—"मधु-
सूदन ! आपकी प्रतिज्ञा थी कि मैं हथियार न उठाऊंगा, पर
अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर आपने अब शस्त्र उठाया है तो मुझे
मार डालो, मैं आपके हाथ से मर कर स्वर्ग जाऊंगा।" अभी
यह हो ही रहा था कि अर्जुन होश में आकर रथ से नीचे
उतरे और उन्होंने श्रीकृष्ण का पैर पकड़ कर कहा—"वासुदेव !
आप अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग न करें।" श्रीकृष्ण शान्त हुए और
उन्होंने अर्जुन को फटकारा कि "तुम दादा समझ कर उन्हें
नहीं मारते हो।" इस पर अर्जुन ने मन लगाकर युद्ध करने
की प्रतिज्ञा की तब दोनों रथ पर सवार हुए।

युद्ध फिर ऐसा घोर हुआ कि कौरवों की सेना और बड़े २
महारथियों को अर्जुन के सामने से भागना पड़ा। अन्त में
सन्ध्या समय युद्ध समाप्त हुआ और अर्जुन विजयी होकर लौटे।
आज भी पांडवों की ही जीत रही और वे आनन्दित हुए।

भीष्म को शर शय्या

नवें दिन रात को पांडव श्रीकृष्ण के साथ कौरवों के डेरे
की ओर भीष्म पितामह के शिविर में गये और अपनी विजय
का उपाय पूछने लगे। भीष्म ने प्रसन्न होकर कहा—"जब तक
मैं जीता हूँ, तब तक तुम सब तो क्या देवता भी विजयी नहीं
हो सकते। जो हो, इस अन्याय के युद्ध में मुझे कौरवों की ओर
से लड़ना पड़ता है, पर मैं अब यह नहीं चाहता, अपना अन्त
ही चाहता हूँ। अब तुम एक काम करो—द्रुपद राजा का पुत्र
जो शिखण्डी है वो इस जन्म में मुझे मारने के लिये ही पैदा
हुआ है और वह तपस्या करके मेरे मारने का वर पा चुका है,

को गाण्डीव पर रख कर चलाया। देखते २ वह अस्त्र पाताल की ओर धंस गया और स्वच्छ जल धारा निकल कर भीष्मपितामह के मुख में पड़ने लगी। भीष्म ने सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दिया और कौरव अपना सा मुंह लेकर खड़े रहे।

कुछ समय के बाद उनकी प्रदक्षिणा करके सब लोग अपने २ शिविर में गये। पितामह के चारों ओर खाई खोद दी गई, जिसमें जल भरवाया और एक रास्ता निकाल कर पहरे बैठा दिये गये जिसमें पता मिलतारहे। युद्ध समाप्त होतेही संध्या के समय दोनों ओर के वीर उनका दर्शन करने जाने लगे।

कर्ण सदा से द्वेषी थे और यहां तक कि जब पितामह सेना नायक बने तो इन्होंने प्रतिज्ञा करली कि, जब तक ये न मरें, हम शस्त्र ही ग्रहण न करेंगे। इस समय उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर सब के बाद शोक में भरकर आये और रुंधे कंठ से आँसू बहाते हुए बोले—"दादा! मैं अपने अपराधों की क्षमा मांगने आया हूँ मैं कर्ण हूँ।" पितामह अपने प्राणों को ब्रह्मांड में चढ़ाकर आत्मा और परमात्मा के खेल देख रहे थे। शब्द उनके कानों में पड़े तो उन्होंने आँखें खोलकर रोते हुए कर्ण को देखा। पितामह का रोष दूर होगया और उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा "पुत्र! तुम मेरे अन्तिम समय में क्षमा माँगने आये हो, तो मैंने तुम्हें क्षमा किया, अब तुम सुखी रहो। वत्स! तुम महावीर हो, परन्तु सगे भाइयों का विनाश सोचकर जो कुछ कर रहे हो वह निन्दनीय है। तुम भी कुन्ती पुत्र हो मैंने सुना था, अतः अपने भाइयों से अन्याय और विरोध न करके उनका

हक दिला दो और युद्ध बन्द कर दो, यही मेरी अन्तिम आशा है कि सब मिलकर अपना २ सुख देखो।"

उत्तर में कर्ण ने विनीत भाव से कहा—"पितामह! आपका उपदेश कल्याणकारी ही है, परन्तु इस अग्नि का अब युद्ध बिना शान्त होना कठिन है। मैं पांडवों से युद्ध करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, पर अब केवल अर्जुन से युद्ध करूंगा, यही आज्ञा दीजिये!" उत्तर में पितामह ने कहा—"अच्छा तो धर्म युद्ध करना और वीरगति प्राप्त करना। जैसा कर चुके हो फल भोगना ही होगा, परन्तु तुम महादानी के नाम से संसार में अमर होगे यह मेरा आशीर्वाद है। अब जाओ मैं कष्ट पा रहा हूँ।"

कर्ण शोकातुर होते हुए और उनके उपदेशों पर दृष्टि डालते हुए अपने शिवर में चले गये।

द्रोण--पर्व

"पितामह भीष्म के बाद अब कौन सेनापति बनाये जांय?" यह प्रश्न आज हल करने के लिये कौरव इकट्ठे हुए, क्योंकि प्रातःकाल ही फिर युद्ध होना है। दुर्योधन ने कर्ण के लिये प्रस्ताव किया, पर कर्ण ने पहले गुरु द्रोणाचार्य के लिये सलाह दी और यही अन्त में निश्चय हुआ।

सब मिल कर द्रोणाचार्य के पास गये और उनकी बड़ी प्रशंसा की गई। उन्होंने सेना-नायक का पद ग्रहण किया और दूसरे ही दिन से अपनी शक्ति खर्च करनेकी प्रतिज्ञा की। सब प्रसन्न होकर उन्हें पद से विभूषित करने लगे, तो उन्होंने कहा--"धृष्टद्युम्न से मैं न लड़ूंगा, क्योंकि उसका जन्म मेरे मारने के

वह दूसरे जन्म में मेरी स्त्री थी। अर्थात् काशीराम की कन्या अम्बा थी। मैंने उसे स्वीकार नहीं किया था तो उसने बदला लेने के लिये तपस्या की और वर पाकर अब इस जन्म में बदला उतारेगा। तुम उसी शिखण्डी को अपना सेनापति बनाकर आगे करो। जब वह सामने आवेगा, तो मैं शस्त्र फेंक दूंगा क्योंकि स्त्री से युद्ध करना मेरा धर्म नहीं होगा। उस समय मौका पाकर मुझे मार डालना। शिखंडी द्रुपद के यहां कन्या के रूप में ही जन्मा था पर एक दानव के वरदान से वह कन्या से पुरुष बना हुआ है। जाओ, तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा।"

पांडव सन्तुष्ट होकर लौट आये और शिखंडी को सेनापति का पद देकर उन्होंने सब ठीकठाक कर लिया। दसवें दिन के युद्ध में भीष्म ने इतना घोर युद्ध किया पांडव भी घबरा गये। होते २ शिखंडी को आगे कर दिया गया। उसे देख भीष्म ने अपने शस्त्र फेंक दिये पर शिखंडी उन पर वार करता ही गया। शिखंडी की आड़ में होकर अब अर्जुन ने बाण बरसाने शुरू कर दिये, जिससे विवश होकर भीष्म धरती पर गिर पड़े। कौरवों में हाहाकार मच गया।

भीष्म को वरदान था कि जब तक वे न चाहें उनकी मृत्यु न होगी, अतः उन्होंने गिरते ही कौरवों से कहा—"मेरे लिये अब बाणों की शैया ही बनाओ! मैं उसी पर यहां पड़ा रहूँगा और जब सूर्य उत्तरायण होंगे तब मैं प्राण त्याग करूंगा। अभी सूर्य दक्षिणायण है। इस समय मरने से मेरी गति न होगी।" यह सुनकर युद्ध बन्द कर दिया गया और भीष्म के

लिये शरशैया तैयार की गई, वे उसी पर डाल दिये और कौरव रोते पीटते अपने शिविर में गये ।

आज भीष्म का अन्त हो गया पांडवों को विजय प्राप्त हुई, परन्तु दादा को मारकर वे प्रसन्न न हुए और उनकी अद्‌भुत वीरता का बखान करते हुए सब यथा स्थान गये और जब श्रीकृष्ण ने समझाया और विजय की भावी आशा दिलाई तो सब शान्त होकर अगले दिन की फिकर करने लगे ।

कौरवों में भारी शोक छाया और "अब सेनानायक किसे बनाया जाय" यह फिकर हुई । खैर, सन्ध्या होने पर कौरव और पांडव दोनों ही भीष्म की शरशैया के पास गये और सब ने प्रणाम कर आशीर्वाद लिया ।

भीष्मपितामह का सारा शरीर बाणों की नोक पर पड़ा था अंगुल २ पर बाण चुभे हुए थे । केवल सर लटक रहा था और वे इससे व्याकुल थे । उन्होंने सर के नीचे तकिया वैसा ही लगाने को कहा । कौरवों ने तकिये तुरन्त मंगवाये, पर भीष्म ने न लिये और अर्जुन से कहा—"वीर पुत्र ! तुम मुझे वैसा तकिया दो जैसा मैं चाहता हूँ ।" अर्जुन ने उसी समय तीन तीर ऐसे मारे कि जमीन और उनके सर में अटक गए सर ऊंचा हो गया । यह करामात देखकर भीष्म ने अर्जुन को आशीर्वाद दिया ।

कुछ ही समय में उन्हें प्यास लगी और पानी मांगा । कौरवों ने चांदी सोने के पात्र में पानी मंगवाया पर भीष्म ने वह न लेकर फिर अर्जुन से कहा—"पुत्र तुम मुझे स्वच्छ जल पिला सकते हो तो पिलाओ !" अर्जुन ने उसी समय वरुणास्त्र

की रचना की थी। सेना का यह ऐसा व्यूह है कि इसमें आये हुए शत्रु वीर जीते जी निकल ही नहीं सकते थे।

चक्रव्यूह की रचना की गई और उधर संसप्तकों ने फिर आज अर्जुन को ललकारा और दूर भगा ले गये। युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई कि "अर्जुन संसप्तकों से लड़ने गये। अब चक्रव्यूह को उसके सिवा कोई नहीं तोड़ सकता, आज निश्चय ही हमारा कल्याण नहीं।" धर्मराज की चिन्ता देखकर अर्जुन सुत वीर अभिमन्यु ने खड़े होकर कहा—"पूज्य, चक्रव्यूह तोड़ना मैं जानता हूँ, परन्तु फिर अन्दर से तोड़ कर बाहर आना मैं नहीं जानता।" इस पर युधिष्ठिर ने कहा "पुत्र अभिमन्यु! चक्रव्यूह तोड़ना तुमने कहां से सीखा?" अभिमन्यु ने कहा "पूज्य! चक्रव्यूह तोड़ने की कथा पिताजी नें माता सुभद्रा को सुनाई थी, फिर माता सो गई, पिताजी ने सुनाना बन्द कर दिया, वहां तक मुझे याद है।" मुझे आज्ञा दीजिये तो मैं चक्रव्यूह को जाकर तोड़ डालूं। मैं तोड़ूंगा, आप सब मेरे पीछे रहियेगा, चाचा भीम सेन रहेंगे फिर अन्दर इकट्ठे होकर उसे तोड़ डाला जायगा।" अभिमन्यु का उत्साह देखकर सब प्रसन्न होगये और उसे आशीर्वाद देकर बिदा किया। "हाय होनी!"

अभिमन्यु बध

चक्रव्यूह बड़ा बिकट व्यूह था, अभिमन्यु सिंहकी तरह गरजता हुआ चक्रव्यूह के द्वार पर पहुंचा। द्वार पर महाबली जयद्रथ था, जिसने एक दिन के लिये पांडवों को जीतने का वर पाया था और वह अर्जुन से बदला चुकाना चाहता था।

महावीर अभिमन्यु ने जयद्रथ से ऐसा युद्ध किया कि वह

बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर गया। उसे मूर्छित करके वीर ने चक्रव्यूह का पहला द्वार तोड़ा और अन्दर चला गया।

युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव पीछे ही थे, जयद्रथ होश में आया तब तक सब आ गये। जयद्रथ ने उनसे युद्ध शुरू कर दिया और भीतर जाने नहीं दिया।

चक्रव्यूह के अन्दर महावीर बालक अभिमन्यु ने दुर्योधन, कर्ण, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुःशासन, शल्य आदि महावीरों को सात बार मार २ कर पराजित किया। परन्तु वह व्यूह तोड़ कर बाहर जाना नहीं जानता था। पांडव उस तक पहुंच न सके, वह विवश होगए। विवश महावीर ने कौरवों तथा उनके पक्षपातियों सहित ऐसा पछाड़ा कि वे कांप उठे। दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण मारा गया।

अन्त में सप्त महारथियों ने एक साथ मिलकर उस बालक पर प्रहार किया और अन्याय पूर्वक मार डाला। यह मृत्यु कौरवों को प्रसन्नता परन्तु पांडवों के लिये वज्रघात था। सुभद्रा के लिये अनर्थ था और उत्तरा के लिये तो यह पति की मृत्यु क्या थी कि जीवन जन्म का सौदा लुट गया था। हाहाकार मच गया, पांडव सेना तक रो उठी, शोक क्रोध में बदल गया और पांडवों ने विकट युद्ध छोड़ कर कौरव सेना का संहार करना शुरू कर दिया, परन्तु सन्ध्या हो गई थी, युद्ध कौरवों की ओर से वन्द होगया था। लाचार हो रोते हुए युधिष्ठिर, भीम आदि शिवर में गये, शोक सागर उमड़ आया।

इसी समय श्रीकृष्ण और अर्जुन लौट कर आये। उन्होंने शोक का कारण पूछा और जब पता लगा तो अर्जुन वीर पुत्र

लिये ही हुआ है। इसको सब ने स्वीकार कर लिया और वे विभूषित हुए।

नई चाल

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को बड़े विनीत भाव से कहा--"गुरुदेव! आप कल किसी तरह युधिष्ठिर को पकड़ लाइये। हम लोग फिर उनको जुआ खेल कर हरा दें, तो युद्ध भी वन्द हो जाय और वे फिर दर २ टक्कर मारें, रक्त पात भी न हो।"

आचार्य इस षड़यन्त्र को समझ गये और मन ही मन दुःखित होकर बोले-युधिष्ठिर को पकड़ना सहज नहीं है, क्योंकि उनका रक्षक अर्जुन है। अर्जुन के पास दिव्य अस्त्र हैं, उसके रहते यह नहीं हो सकता। अर्जुन को तुम लोग हटा सको तो मैं यह उद्योग करूंगा।

इस पर राजा सुशर्मा तथा संसप्तकों ने अर्जुन को अपनी ओर ललकार ने की प्रतिज्ञा की। तब द्रोण ने भी युधिष्ठिर को पकड़ने की बात मान ली। यह खबर पांडवों को भी गुप्तचर से लग गई। उन्होंने भी परामर्श करके अर्जुन को खबरदारी में किया।

ग्यारहवां दिन

ग्यारहवें दिन युद्ध फिर आरम्भ होगया, अब सब अपने दाव में लग गये। नये उत्साह में भर कर द्रोणाचार्य ने बड़ा ही भीषण युद्ध छेड़ा और गाजर मूली की तरह सेना काटते हुए युधिष्ठिर तक पहुंच गये और उन्हें घायल कर दिया। अर्जुन कुछ दूर थे, सुनकर तुरन्त लौटे और कौरवों को मार भगाया।

इतने में सन्ध्या होगई, द्रोणाचार्य ने युद्ध वन्द कर दिया। आज
कुछ न वन पड़ा, दुर्योधन निराश हो गये। आज फिर संसप्तकों
ने प्रतिज्ञा की कि "कल हम अर्जुन को ललकार कर दूर ले
भागेंगे और इधर आप लोग युधिष्ठिर को पकड़ लें। हम जीते
जी अर्जुन को फंसाये ही रक्खेंगे" दुर्योधन शान्त हुआ और
दूसरे दिनकी कार्यवाही सोची जाने लगी।

वारहवें दिन प्रातःकाल होते ही युद्ध आरम्भ होगया। त्रिगर्तों
ने अर्जुन को युद्ध के लिये ललकारा। अर्जुन समझ गये कि
यह धर्मराज को पकड़ने की चाल है, परन्तु ललकार के सामने
जाना ही पड़ा। वे महावीर सात्यकी को उनकी रक्षा में छोड़
कर उनके पीछे रथ लेकर दौड़े। वे सव दूर निकल गये थे और
आगे जाकर मोर्चा वांधा था इधर से श्रीकृष्ण ने भी रथ लेजाकर
सामने खड़ाकर दिया। अर्जुन ने महायुद्ध शुरू कर दिया और
कुछ ही समय में उन्हें मार भगाया।

त्रिगर्तों पर विजय पाकर वे लौटे, तो रास्ते में महावली
राजा भगदत्त इन्द्रावत हाथी पर सेना सहित उनको रोकने को
खड़े थे। उनसे भीषण युद्ध हुआ और भगदत्त को मार अर्जुन
युधिष्ठिर की ओर वेग से गये। उधर द्रोणाचार्य ने तव तक
सात्यकी को मार डाला था और युधिष्ठिर हटने ही लगे थे,
इतने में अर्जुन आगये और घोर युद्ध फिर शुरू हो गया।
द्रोणाचार्य को पीछे हटना पड़ा। इतने में सन्ध्या होगई, युद्ध
वन्द होगया।

तेरहवें दिन महायुद्ध हुआ। आज द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह

अभिमन्यु की मृत्यु सुनकर महाशोकातुर हुए। श्रीकृष्ण ने सबको धैर्य दिया, पर अर्जुन ने एकाएक जब यह सुना कि "जयद्रथ ने सबको चक्रव्यूह के अन्दर जाने से जीत लिया है, क्योंकि उसे वर था। वही अभिमन्यु की मृत्यु का कारण है,, तो वे जयद्रथ पर महा क्रोधित हो उठे। अर्जुन ने उसी समय प्रतिज्ञा की कि "कल सूर्यास्त से पहले मैं यदि जयद्रथ को न मार सका, तो चिता में जल कर राख हो जाऊंगा।"

अन्त में श्रीकृष्ण ने फिर चेष्टा कर सब को शान्त किया और अभिमन्यु की वीरता की प्रशंसा करने लगे, जिस अकेले बालक ने बड़े २ सात महारथियों को सात बार मार भगाया, फिर अन्याय से कौरवों ने मारा। अर्जुन पुत्र की वीरता सुनकर कुछ शान्त हुए और फिर दूसरे दिन के लिये कार्यक्रम सोचने के लिये कुछ समय को सब ने अपना मन पत्थर का बना लिया। अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लेने के लिये पांडव आज रात्रि से ही क्रोध में भर कर बैठे कि कब सबेरा हो।

जयद्रथ बध

आज चौदहवां दिन है। अर्जुन की प्रतिज्ञा का पता कौरवों को लग गया था, इससे जयद्रथ भयभीत होकर द्रोणाचार्य की शरण में गया और रोने लगा। द्रोण ने उसे धैर्य देते हुए कहा "क्या बात है ?" दुर्योधन आदि भी संग थे, उन्होंने अर्जुन की प्रतिज्ञा का हाल कहा और उसकी रक्षा करने की प्रार्थना की।

द्रोण ने कहा-"अच्छा, कल मैं शकटव्यूह बना कर उसमें जयद्रथ को रक्खूंगा और संध्या तक हम सब उसकी रक्षा करेंगे ?"

समय पर युद्ध आरम्भ हुआ। पाँडव रात्रि से ही उंवले बैठे थे, भयङ्कर युद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन भी रथ बढ़ाकर शकटव्यूह तोड़कर जयद्रथ के निकट पहुंचने के लिये बड़ा ही विकट युद्ध करने लगे। यह अन्धाधुन्ध युद्ध ऐसा हुआ कि किसी को पृथ्वी आकाश तक देखने का समय न मिला। युद्ध होते २ आकाश में बादल छा गये और किसी का ध्यान न पड़ा। थोड़ी देर में कौरवों ने समझा कि सूर्य अस्त हो गया। वे अर्जुन की प्रतिज्ञा भङ्ग जान खुशी में फूल उठे, अर्जुन भी निराश हो गये। जयद्रथ और दुर्योधन आदि प्रसन्नता से प्रहार करने और अर्जुन को चिढ़ाने लगे।

श्रीकृष्ण ने अब चुपके से अर्जुन को कहा—"वीरवर! सूर्यास्त नहीं हुआ है, अभी दिन है, मैं ठीक जानता हूँ, तुम दिव्यास्त्र से मारकर जयद्रथ का सर आकाश मार्ग से उड़ादो।" अर्जुन ने तुरन्त वैसा ही किया। उसको सामने देखते ही उसका सर ऐसे दिव्यास्त्र से काटा कि वह सर को आकाश की ओर ले उड़ा।

कौरव अन्याय २ चिल्लाने लगे, उधर सूर्यदेव ने दर्शन दिया। यह देखकर सबके सब चुप रह गये। अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी होते ही पांडवों में जय ध्वनि होने लगी और कौरवों में हाहाकार मच गया।

एक बार जमकर फिर युद्ध होना चाहता था, पर जयद्रथ के मरने से कौरवों के पैर उखड़ गये। उधर संध्या भी हो गई तो युद्ध बन्द हो गया और अपने २ शिविर में दोनों दल गये।

श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन ने विजय प्राप्त की, अतः उनका बड़ा सम्मान किया गया। पांडवों ने आज अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ति पर खुशी मनाई और आगे का कार्यक्रम ठीक किया।

कौरवों में हाहाकार मचा हुआ था। दुर्योधन फिर द्रोण के पास जाकर उन्हें पांडवों का हितचिन्तक बनाकर क्रोध करने लगे, पर फल उलटा ही हुआ। द्रोण ने सबको खूब फटकारा, जिससे वे सब चुपचाप चले गये। अपनी २ ओर अब रात दिन युद्ध करने की तैयारियां होने लगीं और दोनों ओर यह समाचार भी प्रकट हो गये और दोनों दल सावधान हो गये।

पन्द्रहवां दिन

"आज पन्द्रहवां दिन था। समय आते ही युद्ध आरम्भ हो गया। आज के युद्ध में कर्ण कूदे और अर्जुन की फिराक में लगे। श्रीकृष्ण ने यह सोचा कि कर्ण के पास इन्द्र की दी हुई शक्ति है, यदि वह व्यर्थ की न जायगी, तो अर्जुन को खतरा है।" यह विचार कर उन्होंने अर्जुन से कहा और भीम के पुत्र घटोत्कच्छ को कर्ण से लड़ा दिया। वह महापराक्रमी और मायावी था, उसने कर्ण के छक्के छुड़ा दिये। अन्त में कर्ण को शक्ति ही चलानी पड़ी, जिससे घटोत्कच्छ मारा गया और पांडवों में हाहाकार मच गया।

श्रीकृष्ण ने कर्ण की शक्ति खर्च हो जाने का, कर्ण के निकम्मे होने का हाल कहकर शान्त किया और फिर जमकर लड़ाई होने लगी। आज का युद्ध रात तक रहा फिर बन्द हुआ।

सोलहवें दिन फिर यह युद्ध छिड़ा और इस युद्ध में महा-पराक्रमी राजा द्रुपद तथा राजा विराट की मृत्यु हुई, जिससे पांडव दल में शोक छा गया। राजा द्रुपद के पुत्र और द्रोपदी के भाई धृष्टद्युम्न पिता की मृत्यु से बड़े शोकातुर हुए। अन्त में उन्होंने प्रतिज्ञा की कि "द्रोणाचार्य का वध मैं कल ही करूंगा।"

दूसरे दिन लड़ाई फिर छिड़ गई, आज पाँडवों ने द्रोण और कर्ण को मार डालने की ठानी थी, अतः घोर युद्ध हुआ। इस बीच में श्रीकृष्ण ने कहा—"द्रोण बिना कुछ हाथ खेले मारे न जायेंगे। उन्हें उनके पुत्र अश्व थामा की मृत्यु सुनाई जाय तो जब वे शोकातुर हों तो उस समय मारा जाय।" लोगों ने इस पर विचार किया सेना में इसी नाम का एक हाथी था, भीम ने उसे मार डाला और धर्मराज ने द्रोणाचार्य से कहा कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण ने उनकी बात सत्य मानी और शोक में आकर हथियार फेंक दिये। इसी समय धृष्टद्युम्न ने मौक़ा ताड़कर उनका सर काट लिया, जिससे कौरव सेना भाग चली। कौरवों में हाहाकार मच गया।

अश्वत्थामा ने यह समाचार पिता की मृत्यु का सुना, तो वे महाक्रोधित होकर पांडवों पर टूट पड़े। उनके पास एक नारायणास्त्र था, जिसकी रोक कोई न जानता था, वही उसने छोड़ दिया जिससे एक अक्षौहिणी सेना मर गई और पांडवों में हाहाकार मच गया। श्रीकृष्ण इसका उपाय जानते थे, उन्होंने सभी को प्रणाम करने की आवाज दी, सबने सर झुका दिया जिससे वह अस्त्र शांत हो गया।

दूसरा उसने आग्नेय अस्त्र चलाया, इसे अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र से विफल किया। अश्वत्थामा भी निराश होगया और उसे भागना हड़ा। अन्त में आज का युद्ध भी समाप्त हुआ और सब अपने २ शिवर में गये। द्रोणाचार्य की मृत्यु होगई, तो दुर्योधन भी निराश हो गया। अब आज कर्ण सेनापति बनाये गये, जो अन्तिम मुख्य महावीर थे।

कर्ण--पर्व

इस दिन भी कर्ण के सेनापतित्व में युद्ध जारी हुआ। उधर तो कौरव पक्ष के महारथी आज कर्ण का पराक्रम देखने को तैयार थे, इधर युधिष्ठिर ने कौरवों के मुखिया कर्ण को मार कर शत्रु दल का भंग करने की आज्ञा दी। दोनों ओर घोर युद्ध छिड़ गया।

कभी कर्ण, कभी दुर्योधन, कभी अश्वत्थामा आदि से बार २ युद्ध हुआ, जिसमें कौरवों को नीचा देखना पड़ा कई बार युद्ध बारी २ से हुआ। कभी एक दल पीछे हटता तो कभी दूसरा इसी तरह अनेक योद्धाओं का बलिदान कर आज का युद्ध भी समाप्त हुआ।

दु:शासन बध

अगले दिन फिर युद्ध छिड़ा तो भीम और दुष्ट दु:शासन से छिड़ गई। यह युद्ध महा विकट था, वीर दु:शासन ने भीम को घायल किया, परन्तु वो और भी क्रोधित होकर उस पर प्रहार करने लगे। होते-होते दोनों में मारने पर ही ठन गई। अन्त में भीम ने गदा प्रहारसे दु:शासन का सर फोड़ डाला। वह धरती पर गिरा तो भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आगई वे

इस समय क्रोध से भरे हुए थे, उनका रूप देखकर इस समय स्वयं पांडव कांप उठे। कौरव सेना चिल्लाकर भागी।

भीमसेन ने दुःशासन की छाती फाड़ डाला और रक्त पान किया, द्रौपदी का बदला उतारा और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। इस समय भीम ने शिवर से द्रौपदी को बुला कर दुःशासन के रक्त से उसके बर सींचे और उसे शाँत किया। कौरवों में हाहाकार मच गया, यहां तक कि अश्वत्थामा ने दुर्योधन को युद्ध बन्द कर देने की सलाह दी, पर दुर्योधन ने न माना और कर्ण को उलटे उत्तेजित कर के अगले दिन पांडवों को तहस नहस करनें को तैयार किया। कर्ण नें अपने लिये श्रीकृष्ण के समान सारथि चाहा, इस पर महावीर शल्य से प्रार्थना की गई। उन्हें युधिष्ठिर के सामने की हुई प्रतिज्ञा याद आगई वे झट उनके सारथि होने को तैयार हो गये। शल्य भी श्रीकृष्ण के समान ही रथ के चलानें वाले थे। कौरवों को इस पर प्रसन्नता हुई।

कर्ण बध

शल्य ने कर्ण को रथ पर बैठाकर अगले दिन युद्ध के मैदान में खड़ा किया। समय पर युद्ध छिड़ गया। आज कर्ण और अर्जुन की ठन गई और दोनों ओर के महावीर इस विकट युद्ध को देखने के लिये घिर गये। कभी कर्ण और कभी अर्जुन विकट मार और दिव्यास्त्रों के झपेट में आकर ऊबनें लगे, परन्तु आज दोनों ही महावीरों में मारने वाली बाजी थी। ठहर २ कर जोश में आने और एक दूसरे पर वार करने वाले इस घोर युद्ध को देखकर दोनों दल दहल उठे और किसी की क्षमता उन्हें पास से देखने की न पड़ी सब पीछे हट गये।

इस युद्ध में शल्य ने कई बार कर्ण का वार खाली कराया जिससे कर्ण ने उन्हें फटकारा। एक बार श्रीकृष्ण ने अपने कौशल से भी अर्जुन को बचा दिया। होते २ अर्जुन ने उसकी छाती में एक शक्ति बाण मार कर कर्ण को पृथ्वी पर गिरा दिया। अर्जुन ने फिर वार नहीं किया।

इस पर कौरव टूट पड़े और कर्ण की रक्षा करने लगे। कर्ण का होश आते तक कौरवों ने युद्ध किया, जिसमें पाँडवों ने उनके छक्के छुड़ा दिये। अन्त में कर्ण फिर नये जोश में आकर भिड़ गये और दोनों में फिर घोर युद्ध होने लग गया।

इस बार लड़ते २ कर्ण का रथ पृथ्वी में धंस गया, तब कर्ण ने अर्जुन से कहा—"हम रथ को कीचड़ से निकाल लेवें तब युद्ध करना!" पर सुनता कौन था? कर्ण ने भी जोश में आकर बाण एक ऐसा मारा कि अर्जुन कुछ देर का बेहोश हो गये। कर्ण कूद कर रथ का पहिया कीचड़ से निकालनें लगे, इतनें में अर्जुन का होश आगया। श्रीकृष्ण नें उस समय अर्जुन से कहा—"वीरवर! अब देर न करो, अन्यायी दुर्योधन के पक्ष-पाती का संहार करो!"

अर्जुन ने वैसा ही किया एक पैना बाण छोड़कर कर्ण का सर काट डाला और कृष्ण ने विजय शंख फूंक दिया, जिससे पांडव गद्‌गद् प्रसन्न हो उठे और कौरवों के शोक की सीमा न रही।

शल्य पर्व

सत्रहवें दिन के युद्ध में महावीर मद्रनरेश शल्य सेना पति बनाकर युद्ध क्षेत्र में भेजे गये। शल्य ने भी घोर संग्राम आरम्भ

कर दिया। युधिष्ठिर की भी इच्छा आज शल्य को मारने की हुई और आज वे भाइयों सहित मामा शल्य से भिड़ गये।

इस घोर युद्ध में युधिष्ठिर के हाथों शल्य और सहदेव के हाथ से जूआ खिलाने की जड़ शकुनि मारे गये। अब तक राजाओं में दुर्योधन ही जीता बचा, जो इतना शोकातुर हुआ कि भाग कर एक तालाब में छिप गया।

दुर्योधन-बध

दुर्योधन के छिपने की बात प्रगट हो गई। भीम उन्हें खोज कर मारने और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये उत्तेजित हो उठे। सब मिल कर तालाब की ओर चले। कौरवों की ओर अश्वत्थामा आदि भी पहुंच गये थे, इधर पांडव भी जा पहुंचे।

श्रीकृष्ण की सलाह से युधिष्ठिर ने दुर्योधन को ललकारा और युद्ध करने को कहा। वह भी क्रोध में भर कर बाहर आया और बोला "मैं इस समय निरस्त्र हूँ, तुम सब मिल कर मारने आये हो। खैर, मेरे कारण ही कौरवों के साथ भारत के सभी वीर मारे गये। अब मैं भी आज एक से अन्तिम युद्ध करूंगा। मेरी जोड़ का गदाधारी भीम है, उसी को सामने करदो जो होगा देखा जायगा।"

अभी यह सब हो ही रहा था कि संयोग से तीर्थ यात्रा करते हुए श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम जी उधर से आ निकले। उन्हें देख सब ने उनका सम्मान किया। बलराम जी ने ही दुर्यो-धन और भीम को गदा युद्ध सिखाया था। जब उन्होंने सुना तो वे दोनों को गले से लगा कर कहने लगे—"अच्छा अब अन्तिम

युद्ध होता है, तुम दोनों युद्ध करो, पर दुर्योधन ! तुमने बड़े २ खोटे काम किये हैं ।"

अन्त में गुरु बलराम को प्रणाम कर दुर्योधन और भीम अपनी-अपनी गदा लेकर भिड़ गये। दोनों गदाधारी एकही समान प्रवीण थे। घोर युद्ध हुआ और दोनों वीर एक दूसरे को मारने के लिये तुल गये। दुर्योधन फुर्तीला था और भीम बली थे, इस कारण दुर्योधन को जीतना एक प्रकार कठिन ही था। श्रीकृष्ण ने इस समय लड़ते २ भीम को इशारा करके प्रतिज्ञा याद करा दी, जो द्रौपदी के चीर-हरण के समय भीम ने "दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी।"

भीम उत्तेजित हो उठे और वही करने की चेष्टा करने लगे। कमर के ऊपर ही गदा युद्ध होता है, नीचे मारना गदा युद्ध का धर्म नहीं। पर भीम ने मौका ताक कर दुर्योधन की जाँघ पर गदा मार ही दी, जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, टाँग तक चूर २ होगई।

अधर्म का यह युद्ध देखकर बलराम बिगड़ उठे और भीम को मारने पर तैयार होगये। श्रीकृष्ण ने बड़ी कठिनता से कौरवों का अन्याय दिखाकर उन्हें रोका, परन्तु वे भीम को दुर्वाक्य कहते हुए वहाँ से चले गये। दुर्योधन वहीं पड़े २ कराहने लगे।

पाण्डव आनन्द मनाते हुए अपने शिवर में आगये और विजय की खुशियां मनाई जाने लगीं, उधर कौरवों के हस्तिनापुर में शोक की काली घटा छाई हुई थी और दुर्योधन पड़ा २ अपनी काली करतूतों को रो रहा था।

अब रह गये अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा, जो यह

अवस्था देख दुर्योधन के पास पहुंचे। बड़े शोक में भरकर उस समय अश्वत्थामा ने पांडवों से आज ही बदला लेने की प्रतिज्ञा की और दुर्योधन को शान्त करके चल पड़े।

सौप्तिक--पर्व

अश्वत्थामा यूं तो पांडवों से भयभीत ही थे, पर दुर्योधन के सामने वे प्रतिज्ञा कर आये थे और वे सेनापति का पद अन्तिम काल में प्राप्त कर पांडवों से बदला लेने चले।

सामने होकर युद्ध करना टेढ़ी खीर थी, अतः अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा तीनों ही रात अंधेरी में पांडवों के शिवर के पास जाकर छिप गये। तीनों मिल कर तरह २ की नीच कामनाओं के वशीभूत होकर धोखे से पांडवों को मारने की सलाह कर वहीं बैठे रहे कि "आधी रात में अपना काम करेंगे।"

महा नीचता

अंधेरी रात में तीनों वीरों ने मिलकर चुपचाप ही पांडव शिवर पर छापा मारा। सौभाग्य से पांडव रात्रि को एक अलग शिवर में सोये थे, सलाहों में रात ज्यादा होगई इसी से एक ही जगह पर सो रहे थे।

इन तीनों ने अपनी नीचता का पूरा परिचय दिया। सोते हुए अगणित वीरों को काट डाला, धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी के पांचों पुत्रों को पांडव जान कर उन्होंने सर काट लिया और पांडवों को मरे जानकर बड़े आनन्द से दुर्योधन की ओर चल पड़े।

दुर्योधन की मृत्यु

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा तीनों दिन निकलते २ दुर्योधन के पास पहुंचे। वह बेहोशी में पड़ा था और कुत्ते उसकी

जांघ का मास नोचने की तैयारी कर रहे थे। इन तीनों ने जाकर इस अवस्था को देखा, तो बड़े शोकातुर होकर दुर्योधन को होश में लाने लगे।

दुर्योधन होश में आया और अश्वत्थामा ने पांच सर उसके सामने रखे, तो वह पहचान गया कि यह पांडवों के पुत्र हैं, पर पांडव बच गये। दुर्योधन को उस समय बड़ा शोक हुआ, उसके प्राण बुरी तरह निकल गये। तीनों वीर रोते-पीटते लौट गये।

मणि हरण

सवेरे जब पांडवों ने पुत्रों की तथा अपने आत्मियों की मृत्यु का समाचार सुना, तो वे दौड़े शिवर में आये। द्रौपदी ने घोर विलाप किया। पांडवों के शोक का ठिकाना ही न रहा।

शोक में भर कर द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की कि "जब तक अश्वत्थामा से बदला न लिया जायगा, मैं अन्न जल ग्रहण न करूंगी।" इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये भीम तैयार हो गये और उसी समय नकुल को सारथी बना कर वे अश्वत्थामा की खोज में गये।

इतने में श्रीकृष्ण पहुंचे। उन्होंने सारा हाल सुना तो वे सब को शान्त करने के बाद बोले—"अब देर न करो, भीम अश्वत्थामा को मारने गयें हैं, पर अश्वत्थामा के पास 'ब्रह्म-शिरा', नामक एक अस्त्र है, जिससे भीम मारे जायेंगे, वह अस्त्र खाली न जायगा और उसे कोई रोक भी नहीं सकता, सिवा पाशुपतक।" यह सुन सभी दौड़ पड़े और रास्ते में भीष्म को जा मिले। सब मिलकर अश्वत्थामा को खोजने लगे।

अश्वत्थामा गङ्गा तट पर व्यासदेव के पास बैठे थे। उन्हें देखते ही भीम ने ललकारा। अश्वत्थामा भयभीत हुए और

लाचार होकर सामने आये और ब्रह्मशिरा ही को छोड़ दिया। इधर कृष्ण जी ने अर्जुन को कह कर पाशुपत छुड़वाया। दोनों दिव्यास्त्र रास्ते में टकरा गये और प्रलय का सामान उपस्थित हो गया।

यह देख व्यासजी ने कहा—अपना २ अस्त्र रोको अन्यथा प्रलय हो जायेगी। महा मुनि की बात माननी पड़ी अर्जुन ने अपना पाशुपत तो वापस किया क्योंकि वे रोक जानते थे पर ब्रह्मशिरा अग्नि वर्षा करने लगा उसकी रोक अश्वत्थामा न जानते थे।

अन्त में वह अस्त्र अभिमन्यु के गर्भस्थ पुत्र, पर भेजना स्थिर हुआ क्योंकि वह किसी का नाश किये विना लौटने वाला न था। अश्वत्थामा ने उत्तरा पुत्र वध की धारणा कर ब्रह्मशिरा को आगे किया, वह गर्भस्थ वालक की मृत्यु का कारण हुआ।

इसके बाद अश्वत्थामा ने ही हार मानी और युद्ध न करने को कहा। इस पर पांडवों ने अश्वत्थामा के मस्तक में एक मणि थी, वह मांगी। अश्वत्थामा को वह मणि देनी पड़ी तब सन्धि हुई।

पांडव इस प्रकार विजयी होकर लौटे और अश्वत्थामा ने व्यासदे के पास ही तपस्या में जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया।

पांडव शिविर में आये और द्रौपदी को सारा हाल कह कर शान्त किया गया। अन्त में वह मणि युधिष्ठिर के मुकुट में द्रौपदी की इच्छा से लगाई गई।

स्त्री-पर्व

युद्ध का अन्त

दुर्योधनकी मृत्यु के बाद युद्ध का अन्त हो ही गया था। बचीखुची सेनायें लौट गईं। पांडवों की विजय वैजन्ती फहराने लगी और कौरवों का विनाश हो गया।

इस महायुद्ध में सब मिलाकर अट्ठारह अक्षौहिणी सेना मारी गई और भारत के सभी वीर, वीर गति को प्राप्त हुये।

हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र, विदुर तथा कौरव-कुल-कामिनियों में हाहाकार मचा हुआ था। धृतराष्ट्र भी शोकसे व्याकुल होकर पिछली बातें याद करने लगे, पर अब होता क्या था? अन्त में महात्मा विदुर ने बड़ी कठिनता से सबको कुछ शांत करके मृतकों का मृतक संस्कार करने की सलाह दी।

धृतराष्ट्र, कुन्ती, गांधारी तथा पुत्र बन्धुओं सहित सब रण-क्षेत्र में गये और मृतक शरीर देख २ कर स्त्रियों ने बड़ा ही हृदय-भेदक विलाप किया।

इतना हो जाने पर धृतराष्ट्र अपने मनमें दुर्योधन के मारने वाले भीम पर क्रुद्ध थे और बदला लेना चाहते थे। जब धृतराष्ट्र रणभूमि में गये तो पांडव भी आ पहुंचे। धृतराष्ट्र ने पांडवों का आना सुनकर उनके प्रति मुंह देखी प्रगट की और कहा—"भीम! अब जो होना था हो चुका, मुझे तुम्हीं लोगों को देखकर जीवन बिताना है। आओ, मेरे गले से लगो।" कृष्ण उसके मनकी बात ताड़ गये और जब उन्हें यह गुप्त खबर मिली थी तभी उन्होंने लोहे का एक भीम बनवा लिया था, यही उस समय आगे किया गया।

धृतराष्ट्र ने उसे भीम समझकर ऐसा दबाया कि वह चूर चूर

होगया। जब यह हो चुका तो कृष्ण ने उन्हें सारा रहस्य बताकर बहुत लज्जित किया। धृतराष्ट्र ने पश्चाताप किया और जब उनका मन सत्य पक्षको देखकर डुल गया और वह ठिकाने आये तो उन्हें पांडवों ने शांत किया। इसके बाद मृतकों की क्रिया करने का उपाय होने लगा। धृतराष्ट्र ने अब अपने आपको जानकर पांडवों को गले लगाया।

गांधारी का शाप

जब कुरुक्षेत्र की रणभूमि में गांधारी ने देव तुल्य व्यासदेव के वरदान से दिव्य दृष्टि द्वारा पुत्र दुर्योधन की लाश देखी तो उसका धैर्य जाता रहा और शोक तथा क्रोध में भरकर इस महा युद्ध का मूल श्रीकृष्ण को समझ उनके पास जाकर कहने लगी कि यह सब अनर्थ आपकी शिक्षा न मानने के कारण ही हुआ है, परन्तु मेरे पुत्रों का जो विनाश हुआ है वह अधर्म पूर्वक हुआ है, इसका मुझे दुःख है। इतने में भीम ने कहा कि यदि आप इस बात को सत्य समझती हैं तो मुझे इसका दण्ड दें।

गांधारी को युधिष्ठिर पर बड़ा क्रोध था, परन्तु वंश क्षय का ध्यान करके उन्हें शाप नहीं दिया। केवल भगवान कृष्ण को यह कहा कि यह युद्ध का भयानक परिणाम मेरे हृदय को छेदे डाल रहा है। वीर पतियों के शवों पर उनकी पत्नियों का करुण क्रन्दन गांधारी के मनको सन्तप्त कर रहा था। भगवान श्री कृष्ण ने कहा कि गान्धारी! तुम्हें अपनी प्यास को शांत करने के लिये गंगा पर चलना चाहिये। इस पर युयुत्सु ने युद्ध में काम आये वीरों की संख्या भगवान से पूछी और उत्तर में भगवान ने

कहा कि इस युद्ध में अड़सठ करोड़ एक लाख बत्तीस हजार राजा सात हजार पाँच सौ महाराजा और चौदह लाख चौदह हजार योद्धा मारे गये हैं।

इसके उपरान्त युधिष्ठिर की आज्ञा से संजयादि ने मृत वीरों का अन्तिम संस्कार किया।

इसके उपरान्त महाराज युधिष्ठिर ने कहा कि हे युयुत्स ! उपरोक्त संख्या के अतिरिक्त जो मनुष्य इस युद्ध में काम आए हैं, वे गंधर्व पने को प्राप्त हो गए हैं। उनमें से जो यश और कीर्ति के लिए लड़ कर मरे हैं, वे सीधे ब्रह्मलोक में जा विराजे हैं।

इतना कहने के पश्चात् धर्मराज तथा धृतराष्ट्र ने मृत योद्धाओं को जलांजलि से तृप्त किया।

शांति--पर्व

युधिष्ठिर जी भगवान कृष्ण से बोले कि अब आप अर्जुन का राज्याभिषेक कर दें, क्योंकि मैं अब आजीवन तपोवन का जीवन बिताना चाहता हूँ। तब श्री कृष्ण जी बोले कि हे युधिष्ठिर ! महात्मा लोगों का यह कार्य नहीं हैं। जिनके अर्थ तुम दु:खी हो वे अब मिल तो नहीं सकते। जो भी हुआ सभी काल गतिसे हुआ है। अतः इस विषयमें तुम्हें शोक नहीं करनाचाहिये।

यह सुन युधिष्ठिर जी बोले कि हे मधुसूदन जी ! पितामह और गुरुदेव के बध के पाप से मैं कदापि उरिण नहीं हो पाऊंगा इतना कह महाराज आँसुओं को भर लाये। इस पर वेदव्यास जी बोले कि हे युधिष्ठिर ! क्षत्रियों का तो धर्म यही सिखाता है कि "युद्ध के लिये आये हुए गुरु को भी मार कर क्षत्रिय को

राज्य का पालन करना चाहिये। जो ऐसा नहीं वह नर्क भागी होते हैं।" यदि तुम कुछ संशय जानो तो पितामह से अपना सन्देह निवारण करना चाहिये, वे शर-शय्या पर पड़े हैं।

इसके उपरान्त युधिष्ठिर जी सपरिवार भगवान् कृष्णको ले भीष्म पितामह के पास पहुंचे। जो वहां पहुंच कर यथोचित आदर सत्तकार के पीछे भगवान् कृष्ण ने भीष्म जी से युधिष्ठिर जा को प्रातःकाल से धर्मोपदेश करने को कहा। भीष्मजी ने भी युधिष्ठिर के संशय निवारण का वचन दिया।

प्रातःकाल होते ही भगवानन् पांडवों सहित पितामहजी के पास आ उपस्थित हुए। तब धर्मराज ने कृष्णजी की आज्ञासे प्रश्न किया कि राज धर्म क्या है?

भीष्मजी ने उत्तर दिया—कि धर्मराज! सम्पत्ती धर्मात्माओं की सेवा से ही सुशोभित होती है। जो राजा सदा गौ, ब्राह्मण की सेवा करता है और समय के अनुसार शांति तथा क्रोध का आश्रय लेता है वही अजेय होता है।

धर्मराज ने पुनः कहा कि—पुत्र पितादिके क्षय होने पर मनुष्य किस प्रकार शोक से मुक्त हो सकता है? उत्तर में भीष्म ने कहा कि इसका शभ, दमादि ही एक मात्र उपाय है।

इसी प्रसंग में एक कथा भी धर्मराज को सुनाई कि निरत नामक ब्राह्मणके पुत्रने मेधावी से पूछा कि पिता, संसार के प्राणियों की आयु दीर्घ होने के क्या उपाय हैं? तब उसके पिता ने कहा—कि वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने वाले कभी भी अल्पायुष्क और सशोकी नहीं होते हैं।

धर्मराज ने पुनः पूछा कि महाराज! सत्पुरुषों के सुख किस

प्रकार उदय होते हैं ? तब पितामह ने एक प्रसङ्ग इस प्रकार से सुनाया—एक संपाक नामक ब्राह्मण इतना निर्धन था कि उसकी स्त्री भी उसका सर्वदा तिरस्कार करती थी। उसने अपने अन्त समय में कहा था कि मनुष्य उत्पन्न होते ही मोहादि का त्याग करदे तो मनुष्य सदा सुख दुःखादि से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार अनेक प्रकार की कथाओं द्वारा धर्मराज के मनका संशय दूर किया और कहा कि मूर्ख मनुष्य सदा धनार्जन की चिंता से ही दुखी रहता है। परन्तु आनन्द तो वास्तवमें योग के प्रकाशमें है।

इहके उपरान्त धर्मराज बोले कि हे पितामह ! मैंने आपके द्वार दिया धर्म विषयक उपदेश सुना और हृदय में धारण कर लिया है। अब कृपा कर मुझे यह बमाइये कि आपत्तियों के कारण सर्व प्रकार से निर्बल जो राजा हैं, उसका क्या धर्म है ?

तब पितामह बोले कि हे धर्मराज ! जो राजा आपत्तियों में पड़ गया हो तो उसे चाहिये कि अपने शत्रुओं से मिल जाय और अपने कला-कौशल से अपना नष्ट हुआ धन प्राप्त करे। यदि शत्रु प्रबल हो और अपने पास भित्रादि बल न हो, तो राजा को दुर्ग में बैठकर आपत्ति-काल बिताना चाहिये। यदि दुर्ग बल भी न हो तो भी शत्रु से युद्ध तो अवश्य ही करे। क्योंकि यदि युद्ध में मर जायगा तो स्वर्ग प्राप्त होगा, और जीत गया तो राज्य-सुख का भोग करेगा। राजा को कभी भी ब्राह्मणादि का धन ग्रहण न करना चाहिये। नीति पूर्वक अपने कोष को बढ़वे। धनियों से मेल रखे। आपत्ति-काल में सब से अधिक राजा को अपने प्राणों की रक्षा करनी चाहिये और समय पाकर शत्रु को घेर कर समाप्त करदें। शत्रु चाहे कितना ही प्रिय बोले, हर कदापि उसका विश्वास न

करे। अपना मन्त्री गुणी हो तो राजा आपत्ति से बचा रहेगा।

अन्त में धर्मराज के पूछने पर पितामह ने मोक्षधर्म का उपदेश देते हुए कहा कि मूर्खों की तरह धन चिन्ता को छोड़कर आयु और मोक्ष का उपाय करता रहे।

अनुशासन--पर्व

युधिष्ठिर पितामह से बोले कि महाराज! मैंने जो अपने पूज्य गुरुजनों तक को रण में मार कर घोर पाप किया है। हमारा मोक्ष फिर किस प्रकार से हो सकता है?

यह सुनकर भीष्म जी बोले कि धर्मराज! हम सभी की मृत्यु काल द्वारा न होकर करम द्वारा हुई है। इसके लिये तुम द्रोही नहीं हो। अतः तुम इस शोक को त्याग, भगवान् का आश्रम लेकर शुभ कर्म करते रहो, क्योंकि भगवान् ही कर्मानुसार मोक्ष फल देता है।

इधर पितामह युधिष्ठिर को इस प्रकार उपदेश कर ही रहे थे कि एक उज्वल ज्योति उनके कपाल का भेदन करके निकली और भगवान के चरणों में लीन हो गई। इसके बाद धर्मराज ने चिता बनाकर पितामह भीष्म का दाह संस्कार किया और सपरिवार गङ्गा तट पर पहुंच जलाञ्जलि दी। पितामह के निधन पर उनकी माता गङ्गा ने विलाप किया। उसे सुनकर युधिष्ठिरजी ने कहा कि आपके पुत्र भीष्मजी को कोई भी मारने में समर्थ नहीं था। उनकी मृत्यु अपनी इच्छानुसार हुई है, इसलिये उसके लिये आपको शोक न करना चाहिये। इसको सुनकर वहीं गङ्गा ने धैर्य धारण किया। और धर्मराज सपरिवार गङ्गा को प्रणाम कर अपने नगर में पहुंचे, और राज सिंहासन पर बैठ कर अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए राज्य करने लगे।

अश्वमेध-पर्व

धर्मराज जब राजसिंहासन पर बैठे तो उन्हें अधर्म से मारे गये भीष्म आदि आचार्यों की स्मृति हो आई, जिसके कारण उन का मन उद्विग्न हो उठा। धर्मराज की यह दशा देखकर भगवान् कृष्ण, वेदव्यास तथा धृतराष्ट्र जी ने समझाया और धैर्य्य दिया।

तब धर्मराज श्रीकृष्ण जी से बोले—महाराज! मैं इस भयंकर पाप से किस प्रकार मुक्ति पा सकूंगा? तब मुनि वेदव्यास और श्रीकृष्ण जी कहने लगे कि तुम आत्मा की शान्त्यर्थ अश्वमेध यज्ञ करो। इसको सुन धर्मराज ने कहा कि महाराज! मैं निर्धन हूँ और धन के अभाव में किस तरह यज्ञ हो सकता है। तब भगवान् ने कहा कि राजा मरुत्त ने अपने यज्ञ में इतना धन ब्राह्मणों को दिया था कि वे तृप्त होकर अवशिष्ट धन हिमालय में गाढ़ गये थे, उसी धन में तुम यज्ञ करो। राजा युधिष्ठिर के यह कहने पर कि उस धन पर मेरा अधिकार नहीं, उसे लेकर मैं एक और दूसरा पाप नहीं करूंगा। भगवान् ने कहा भूमि पर राजा का अधिकार है, अतः उसमें छुपा हुआ धन भी राजा का ही होता है, इसलिए तुम चिंता न करो।

तब युधिष्ठिर जी ने पुनः वेदव्यासजी से कहा कि महाराज यज्ञ के लिए ब्राह्मण कितने हों? धन कितना होना चाहिए जो उनको दक्षिणा रूपमें दिया जाय।? यज्ञ का घोड़ा किन २ गुणों से युक्त होना आवश्यक है? तब व्यासजी ने कहा कि युधिष्ठिर बीस हजार ब्राह्मण होने चाहिए। एक हाथी, एक रथ और घोड़ा एक गौ और एक सोने का भार, हरेक को दक्षिणामें देना चाहिए। यज्ञका घोड़ा ऐसा हो जिसका एक कान काला हो और चंद्रमा के

समाने स्वच्छ तथा सफेद कान्ति वाला हो। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ विषयक धनकी खोज की और धन प्राप्तकर युधिष्ठिर आनंदित हुए।

इसके बाद दोनों ओर से कुशलक्षेम तथा राजा मरुत के अगाध धन प्राप्ति की खुशी मनाई गई। यह समा बड़े ही सुख का था।

सुख का समय बड़े आनंद से व्यतीत होने लगा। धीरे-धीरे अश्वमेव यज्ञ का विचार स्थिर हुआ और समाचार भेज दिए गए, जिससे चारों दिशा के राजे महाराजे यज्ञ-अश्व को समझ बूझ कर हाथ डालने के लिए सावधान रहें।

सौभाग्य से महामुनि व्यासदेव का आगमन हुआ, सबने उसका बड़ा सत्कार किया। वे प्रसन्न होकर बोले—"बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप लोग अश्मेध की तैयारी कर रहे हैं, यह शुभ कार्य सम्पन्न होजाने पर कल्याण होगा।" पांडवों ने उस समय यज्ञ की तिथि निर्धारित करने की प्रार्थना की। व्यासदेव ने चैत्र की पूर्णिमा को यह शुभ कार्य आरम्भ करने का मुहूर्त्त दिया।

समय उपस्थित हुआ तो यज्ञ का तैयारी की गई और शुभ मुहूर्त्त में यज्ञ का काला घोड़ा बड़ी सजधज से छोड़ागया। महा वीर अर्जुन उसकी रक्षा को दिग्विजय करने के लिए लिए विदा हुए। इधर यज्ञ-कार्य आरम्भ हुआ।

दिग्विजय

दिग्विजय करने के लिए महारथी अर्जुन गये। घोड़ा पहले उत्तर की ओर गया। इधर छोटे २ राजाओं को जीतते और यज्ञ का निमन्त्रण देते हुए त्रिगर्ध देशमें गये और उसे विजय किया।

इसके बाद प्रगज्योतिष, सिन्ध देश को विजय कर मणिपुर गये। मणिपुर का राजा स्वंय अर्जुन का पुत्र बभ्रुबाहन था, जो चित्राँगदा का पुत्र था और नानाका उत्तराधिकारी बना था। उस ने पिता का आगमन सुना तो धन रत्न लेकर स्वागत को आया।

अर्जुन के सामने आते ही उसने चरण छूना चाहा, पर अर्जुन ने दूरसे ही मना करदिया और कहा—"मैं तो दिग्जिय करने आया हूँ और तू स्वागत करता है, तुझे धिक्कार है। मुझ से युद्धकर यदि मेरा पुत्र है।" बभ्रुबाहन बड़े फेर में पड़ा और पिता से युद्ध करने पर आनाकानी सोचने लगा। अन्त में अर्जुन के तिरस्कारित करने पर उसे क्षत्री धर्म के अनुसार युद्ध करना पड़ा।

अर्जुन पुत्र और महावीर न होता इसके क्या माने? उसने जिस समय युद्ध किया तो अर्जुन घबरा उठे। उन्होंने क्रोध में आकर उस पर भीषण प्रहार किया। बभ्रबाहन ने भी जोश में भर कर ऐसा एक बाण ताक कर मारा कि अर्जुन गांडीव लेकर कुछ देर के लिए जमीन पर बैठ गये।

होश में आये तो उन्होंने प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया और फिर अपना वार किया। उधर बालक वीर ने भी फिर अपना आप दिखाया और घायल होकर भी अर्जुन को साथ ही घायल कर दिया, दोनों ही गिर पड़े, सेना चिल्ला उठी।

यह समाचार कहल में पहुंचा तो चित्रांगदा दोड़ी आई और पति तथा पुत्र की अवस्था देखकर शोक में डूब गई। इसी समय नाग कन्या उलूपी जो अर्जुन की भार्या थी, वह पति के आने का

समाचार पाकर पाताल से उसी समय आ पहुंची, तब चित्रांगद विलाप कर रही थी।

सौतन की यह अवस्था देखकर उलूपी ने धैर्य दिया। इसी समय बभ्रुवाहन को होश आगया, पर अर्जुन न जगे। सबने यत्न पूर्वक देखा तो भी स्वाँस न दिखाई पड़ी। बालक पिताकी मृत्यु अपने हाथों देखकर माता के साथ ही विलाप करने लगा।

इसी समय उलूपी ने फिर धैर्य देकर कहा "ठहरो! मैं इस का यत्न करती हूँ" उसने उसी समय कुछ स्मरण किया और संजीवनी मणि उसके हाथ में आगई। उसने वह मणि बभ्रुवाहन को दी कि "पिता की छाती पर रखदो।" बभ्रुवाहन ने वैसा ही किया। अर्जुन उठकर बैठगये, अपने चारों ओर सबों को देख कर चकरा गये और पूछने लगे।

चित्रांगदा ने सारा हाल कहा। उन्होंने उलूपी को हृदय से लगालिया, फिर बभ्रुवाहन को हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया और माताओं सहित हस्तिनापुर जाने की बात कही। बभ्रुवाहन ने प्रसन्नता प्रगट की और आने के लिये कहा। अर्जुन को ठह-राने की कोशिश की गई, पर वे अपने कर्त्तव्य-पथपर थे, वे वहाँ ठहरे नहीं। दोनों पत्नियों को मिलकर वे बिदा हुए और घोड़े के पीछे पीछे चले।

इसके बाद अर्जुन ने सभी देशोंमें भ्रमण किया और जो जिस तरह चला वैसे ही उसे आधीन बनाया। चारों दिशाओं में होकर दिग्विजयी हस्तिनापुर की ओर चल पड़े।

अश्वमेध

दूत ने जाकर पांडवों को अर्जुन के दिग्विजय कर लौटने

का समाचार सुनाया। वे बड़े प्रसन्न हुए और यज्ञ की तैयारी करने लगे। राजाओं को निमन्त्रण भेजे गये और धूमधाम से यज्ञमंडप बनने लगा, जिसका फर्श तक स्वर्ण का बनने लगा।

यथा समय अर्जुन के आने का समाचार मिला। बड़े समारोह से दिग्विजयी का स्वागत किया गया। सभी कार्य अब आनंद मङ्गल के होने लगे। उधर निमंत्रित राजागण, ऋषि मुनि आदि आने लग गये, यथा योग्य सत्कार होने लग गया।

समयपर यज्ञ भी आरंभ हुआ जो निर्विघ्न समाप्त हुआ। इसके उपरान्त दान दक्षिणा दी गई और धर्म व मङ्गलमय राज्य थसापित हो गया।

सर्व राजाओं ने युधिष्ठिर को सिंहासनारूढ़ करके धन रत्नों के ढेर लगा दिये और बड़ी प्रसन्नता प्रगट की।

समाप्ति के बाद कितने ही दिन उत्सव मनाया गया और अतिथि सत्कार ऐसा किया गया कि राजे मुग्ध होगये। अन्तमें विदाई हुई और सब अपने २ प्रदेश में गये।

श्रीकृष्ण भी बहुत दिन तक रहे फिर उन्होंने द्वारिका की ओर प्रस्थान किया।

आश्रम वासी--पर्व

धर्मराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करते रहे और धर्मराज युधिष्ठिर के कारण धृतराष्ट्र तथा गाँधारी अपना जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगे परन्तु युधिष्ठिर की अज्ञानता में धृतराष्ट्र गाँधारी प्रतिदिन फल आदि का भोजन करते हुए भूमि पर शयन करते रहे इसी

प्रकार इन दोनों को पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो गये, एक दिन भीम ने कौरवों की निन्दा की। यह सुनकर धृतराष्ट्र को क्रोध आया और युधिष्ठिर से कहने लगे हे धर्मराज! हम कुछ तुमसे मांगना चाहते हैं यह सुनकर धर्मराज कहने लगे कि हे तात! आपको जिस वस्तु की आवश्यकता हो सो लीजियेगा यह सुनकर धृतराष्ट्र कहने लगे कि अब हम वन को जाना चाहते हैं। यह वचन धृतराष्ट्र के सुनकर धर्मराज व्याकुल हो रुदन करने लगे उसी समय भगवान वेदव्यास आकर धर्मराज से कहने लगे कि हे धर्मराज! आप शुभ कार्य में बाधा क्यों डालते हो यह कार्य तो जितनी शीघ्रता के साथ किये जाय वही इच्छा है क्योंकि यह शरीर तो नाशवान है फिर तुम धृतराष्ट्र को इस पुण्य कार्य से क्यों रोकते हो तुम ज्ञानी होकर भी अज्ञानियों के समान बातें क्यों कर रहे हो। यह वचन भगवान वेदव्यास के सुनकर धर्मराज ने धृतराष्ट्र का वन जाना स्वीकार किया इसके उपरान्त धृतराष्ट्र अपने मृतक पुत्रों का श्राद्ध आदि करके जलांजलि दी और बहुत सा धन ब्राह्मणों को दान दिया यह देखकर भीमसेन को क्रोध आगया परन्तु भीमसेन को अर्जुन ने शान्त कर दिया। धृतराष्ट्र अपने स्वजनों से विदा होकर गांधारी संजय सहित वन को गये और व्यासाश्रम में पहुंच कर धृतराष्ट्र अपने परिवार सहित तपस्या करने लगे कुछ दिवस बाद धर्मराज युधिष्ठिर उन्हें देखने के लिये आश्रम पर गये और उन्होंने जाकर सबको प्रणाम किया तथा धृतराष्ट्र गाँधारी आदिने उन्हें आशीर्वाद दिया और धर्मराज युधिष्ठिर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे, यह देखकर धर्मराज को धृतराष्ट्र

ने समझाया । इसके उपरान्त धर्मराज धृतराष्ट्र से पूछने लगे कि विदुरजी कहां हैं यह सुनकर धृतराष्ट्र कहने लगे कि वायु का सेवन करते हुये कहीं विचर रहे होंगे और वह कभी-कभी आ जाते हैं यह बात हो ही रही थी कि विदुरजी आगये परन्तु उस वन में मनुष्यों की भीड़ देखकर वह भागने लगे उन्हें भागते देख कर धर्मराज भी रुदन करते हुये उनके पीछे भागने लगे यह देखकर विदुर एक वृक्ष के नीचे बैठगये तथा धर्मराज ने अपना नाम बताते हुये उन्हें प्रणाम किया परन्तु उन्होंने धर्मराज को कुछ उत्तर न देते हुये अपना शरीर त्याग दिया और अपने स्वरूप में लीन होगये उसी समय आकाश में से आकाश वणी हुई कि हे धर्मराज ! तुम इनके शरीर को दग्ध न करो क्योंकि इनके शरीर को तो तपोग्नि दग्ध करेगी उसी समय विदुरजी के शरीर से स्वयम् तेज रूपी ज्वाला निकल कर उनके शरीर को जलाने लगी यह वृत्तान्त आकर धर्मराज ने धृतराष्ट्र से कहा ।

यह सुनकर धृतराष्ट्र विदुर का मरण जानकर बहुत दुखी हुये उसी समय भगवार वेदव्यासजी आगये और विदुर जी की मृत्यु की प्रशंसा करने लगे और धृतराष्ट्र से कहने लगे कि आपको किसी बात का कष्ट तो नहीं है यह वचन भगवान वेद व्यासजी के सुनकर धृतराष्ट्र कहने लगे कि हे मुने ! मैं समस्त राज्य का भोग भोगता हुआ सन्यास को प्राप्त हुआ हूँ इसलिये मुझे किसी प्रकार की वेदना नहीं है परन्तु जब प्रातः काल ही मेरी पुत्र वधू रुदन करती हैं उस समय मुझे घोर कष्ट होता है तब भगवान वेदव्यासजी नें उन्हें दिव्यदृष्टि दी जिससे तब भगवान वेदव्यास ने धृतराष्ट्र की पुत्र बधुओ से कहा कि

तुम गङ्गा तटपर जाकर अपने पतियों को जलाञ्जली दो यह सुन कर वह गङ्गा तट पर गईं और गङ्गा में स्नान करते ही अपने पत्तियों के साथ परलोक को चली गईं यह देख कर धृतराष्ट्र राग द्वेष से रहित होगये और भगवान वेदव्यासजी से कहने लगेकि महाराज ! इस दिव्य दृष्टि को भी हरण करलीजिये क्योंकि मुझे यह भी बाधक दीखती है यह सुनकर भगवान वेदव्यास ने उसका हरण करलिया इसके उपरान्त धर्मराज ने एक मास तक धृतराष्ट्र के पास निवास किया और धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार हस्तिनापुरको चले आये और आनन्द पूर्वक शासन करने लगे जिसके द्वारा धर्मराज को यश प्राप्त हुआ, थोड़े समम उपरान्त उनके पास नारद मुनि आये तथा धर्मराज ने उनकी श्रद्धा सहित पूजा की तब नारद मुनि धर्मराज से कहने लगे कि हे राजन धृत-राष्ट्र एक वर्ष तक वायु का सेवन करते हुये तपस्या करते रहे इसके उपरान्त वह स्वयं तपोग्नि में भस्म होगये और उनको जलता देखकर कुन्ती भी उनके साथ जल गई तथा सञ्जय हिमालय पर्वत को चले गये यह कह कर नारद जी चले गये और धर्मराज युधिष्ठिर विलाप करते हुये जलाञ्जली देने के लिये गङ्गा तट पर गये समस्त मृतक आत्माओं को जलाञ्जली देकर उनकी आत्माओं को शान्ति प्रदान करने के लिये ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान दिया और शोक आदि त्याग करते हुये जीवन व्यतीत करने लगे ॥।

मूसल पर्व

एक समय द्वारका के निकट पिंडारक तीर्थ में मुनि दुर्वासा भृगु अंगिरा आदि जप तप कर रहे थे उसी समय जाम्वन्ती के

पुत्र शाम्बको यादवगण एक गर्भवती के रूपमें बनाकर मुनियों से पूछने लगे कि इस स्त्री के गर्भसे क्या उत्पन्न होगा यह वचन सुन मुनियों को क्रोध आया और कहने लगे कि इसके गर्भसे एक मूसल उत्पन्न होगा जो समस्त यादवों का नाश करेगा इसके उपरान्त उसके गर्भ से एक लोहे का मूसल निकला उसे लेकर यादव लोग महाराज उग्रसेन की सभामें गये और समस्त वृत्तान्त उनके समक्ष कहा यह सुनकर उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण कराकर समुद्र में डलवा दिया तथा यह चूर्ण समुद्र की लहरों से किनारे पर आ गया और उसका वन होगया और जो शेष समुद्र में वाकी था उसे एक घड़ियाल निगल गला जब उस का पेट एक धीवरनें चीरा तो उसमें से लोहा निकला उस लोहें को लुब्धक नामक जार ने अपने वाणों में लगा लिया यह वृत्तान्त जानकर श्रीकृष्ण वहुत दुखी हुए और यादवों से कहने लगे कि तुम लोगों को मुनियोंने जबसे शाप दिया है उस समयसे अनेकों उत्पात होरहे हैं इसलिये समस्त यादवोंको द्वारका छोड़कर तीर्थ यात्राको चलना चाहिये यह आज्ञा पाते ही यादव धनधान्य सेना सहित तीर्थ यात्राको चले गये इस समय उद्धवजी श्रीकृष्ण से कहने लगे कि हे भगवान् ! मेरे लिये क्या आज्ञा है यह सुन कर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें दिव्य ज्ञान उपदेश दिया और वद्रिका श्रमको उन्हें भेज आप बलदेवजी सहित तीर्थ यात्राको गये उस समय श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार यादव स्नान आदि कर के व्राह्मणों को भोजन तथा दान आदि देकर प्रसन्न हो गये और मदिरा पान करके आपस में एक दूसरे की निन्दा करते हुये तथा एक दूसरे पक्षमें होते हुये आपस में युद्ध करने लगे और जब

अस्त्र न रहे तो उसी एरावन से पटेरे लेकर उनके ही अस्त्र बनाकर एक दूसरे का निशाना करने लगे और ऐसा भयानक युद्ध हुआ कि समस्त भूमि रक्तमय दिखाई देने लगी। यह देखकर श्रीकृष्ण बलदेवजी ने उन्हें समझाया परन्तु उन दोनों की बात पर किसी ने ध्यान न दिया इस प्रकार समस्त यादवों का संहार कराकर श्रीकृष्ण ने भूमि का भार उतारा और बलदेवजी समुद्र के तटपर शरीर त्यागकर नाग स्वरूप हो समुद्र में चले गये। यह देखकर श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे चरण पर चरण रखकर बैठगये उस समय जरा नाम शिकारीने श्रीकृष्णके चरण को मृगका मुख जान बाण मारा और जब उसने चतुर्भुज रूप भगवान को देखा तो प्रणाम करके कहने लगा कि हे भगवान! यह कार्य मुझसे अज्ञानता में हुआ है आप क्षमा कीजिये और मुझे मार डालिये, यह वचन जरा के सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि तुम भयभीत मतहो जो कार्य तुमने किया है वह मेरी इच्छा से किया अब तुम विमान में बैठकर स्वर्ग में जाओ भगवान की आज्ञा से वह स्वर्ग चला गया उसी समय श्रीकृष्ण का सारथी उन्हें ढूंढता हुआ आया और भगवान की यह दशा देखकर बहुत दुखी हुआ और उसका रथ भी घोड़ों सहित स्वयं आकाश को चला गया। इसके उपरान्त श्रीकृष्ण अपने सारथीसे कहने लगे कि तुम द्वारका जाकर वसुदेवजीसे बलदेवजी की यात्रा तथा यादवों का संहार और मेरी दशा के विषय में कहना और यह भी कहना कि द्वारका अब समुद्रमें डूबने वाली है अतः आप समस्त प्राणियों को लेकर हस्तिनापुर चले जाइये यह कह कर श्रीकृष्ण नेत्र बन्द करके देवताओं सहित स्वर्ग चलेगये और सारथी ने समस्त वृतान्त वसुदेवजी से

जाकर कहा, यह सुनकर वह अर्जुन के सामने भूमिपर गिर विलाप करने लगे यह देखकर अर्जुन भी आर्तनाद करता हुआ कहने लगा कि हे भगवान ! मुझे अकेला छोड़कर आप कहां चलेगये और प्रातःकाल होते ही वसूदेवजी ने स्त्रियों सहित प्रस्थान किया परन्तु सत्यभामा आदि श्रीकृष्ण का स्मरण करके शरीर त्याग कर स्वर्ग को चली गई इसके उपरांत अर्जुनने मृतकोंको जलांजलि देकर समस्त श्रीकृष्ण परिवार सहित हस्तिनापुरको प्रस्थान किया उसी समय समुद्रने द्वारिका को डुबादिया और अर्जुन को स्त्रियों सहित देखकर भील उनको लूटने लगे, यह देखकर अर्जुन अपने गांडीव धनुष पर बाण चढ़ाकर चलाने लगे परन्तु वह सब निष्फल होगये यह देखकर अर्जुन कहने लगा कि आज मुझे क्या होगया जो मैं स्त्रियों की भी रक्षा न कर सका और पृथ्वीसे कहने लगाकि अब तुम मुझे समाजाने के लिये जगह देदो जिससे मैं समाजाऊं इसके उपरांत अर्जुन स्त्रियों सहित हस्तिनापुर में आये अर्जुनको व्याकुल देखकर भगवान वेदव्यास कहने लगे कि हे अर्जुन ! समस्त प्राणी कालके वशीभूत हैं और देवता भी इसके आधीन हैं यदि संसार में नाशवान वस्तुयें न उत्पन्न होती तो फिर कष्ट कौन उठाता, यह कहकर भगवान वेदव्यास चले गये और अर्जुन ने धैर्य धारण किया।

महा भारत

स्त्री-पर्व

धर्मराज युधिष्ठिर अभिमन्यु पुत्र परीक्षत को राजसिंहासन पर बैठाल कर और मृतक स्वजनों का श्राद्ध आदि करके तथा ब्राह्मणों को दानदेकर अपनी भार्या द्रोपदी और भ्राताओं सहित

प्रजा से विदा होकर भूमिकी प्रदक्षिणा करते हुए उत्तर दिशा में पहुंचे उस समय उनके साथ एक स्वान भी होलिया यह समस्त पाँडव हिमालय को पार करके वालुके समुद्र के समीप पहुंच गये और उस समुद्र से चलकर समस्त पांडव मेरु पर्वत को पार कर निराधार मार्ग में भ्रमण करने लगे, उस समय उस मार्ग में द्रोपदी मूर्छित होकर गिरपड़ी तब भीमसैन अपने भाई धर्मराज युधिष्ठिर से पूछने लगे कि हे तात ! इस तरह द्रोपदी का गिरना किस कारण हुआ हैं यह तो बड़ी पतिव्रता स्त्री थी यह वचन भीम के सुनकर धर्मराज कहने लगेकि द्रोपदी का पतन इस लिये हुआ है कि वह हम सबमे अधिक प्रेम इन्द्र पुत्र अर्जुन से रखती थी यह धर्मराज कह ही रहे थे कि नकुल भी मूर्छित होकर भूमि पर गिर गया यह देखकर भीम कहने लगा कि हे धर्मराज ! नकुल किस कारण से भूमि पर गिर गया यह सुनकर धर्मराज कहने लगे कि यह नकुल अपने को कामदेव से भी अधिक रूपवान मानता था इसलिए इसका पतन हुआ उसी समय सहदेव भी भूमि पर गिर गये और भीम के पूछने पर धर्मराज कहने लगे कि यह अपनी बुद्धि के कारण समस्त संसार को जड़ जानता था उसी का फल इसे भोगना पड़ा है और आगे चलकर अर्जुन भी भूमि पर गिर गये उस समय भीम पूछने लगे कि महाराज ! अर्जुन के पतन होनेका क्या कारण है यह वचन भीमके सुनकर धर्मराज कहने लगे कि इस अर्जुन को अपनी वीरता का अभिमान था उसका फल ही उसके सन्मुख आया है इसके उपरान्त भीम भी गिर पड़े उस समय धर्मराज कहने लगे कि तुम्हें

अपने भुजबल का बड़ा घमण्ड था इसी हेतु तुम्हारा पतन हुआ है यह कहते हुए धर्मराजने अपने भाइयों की तरफ देखाभी नहीं और आगे चलने लगे तथा वह स्वान भी उन के साथ चलता ही गया उसी समय इन्द्र रथ लेकर धर्मराज के पास आकर कहने लगे कि हे धर्मराज अब आप रथ पर बैठ कर स्वर्ग चलिये और अपने भाइयोंको स्वर्ग में देखिये यह सुनकर धर्मराज कहने लगे कि मैं इस स्वान को छोड़कर स्वर्ग नहीं जाना चाहता हूँ क्योंकि इस स्वान ने मेरा साथ संकट के समय भी दिया है फिर मैं किस प्रकार इसका त्याग कर सकता हूँ इसके त्यागने से मैं कोई धर्म नही देखता और जब धर्म नहीं तो मुझे स्वर्ग किस प्रकार मिल सकता है, यह वचन धर्मराज के सुनकर इन्द्र कहने लगे कि हे धर्मराज यह स्वान पुण्यके बिना किस प्रकार स्वर्ग जा सकता है ? यह सुनकर धर्मराज कहने लगे कि यदि यह पुण्य हीन है तो मेरे पुण्य द्वारा यह स्वर्ग वासी बने यह सुनकर स्वान ने शरीर त्यागकर धर्म के रूप में होकर कहा कि हे पुत्र ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ अतएव तुम अब स्वर्ग चलो, यह आज्ञा अपने पिता धम की पाकर धर्मराज रथ में बैठ कर स्वर्ग गए और इन्द्र से कहने लगे कि जिस स्थान पर मेरे भाई हैं उसी स्थान पर मुझे भी पहुंचादो यह वचन धर्मराज के सुनकर इन्द्र कहने लगे कि अब आप मनुष्य योनि के समान मोहका त्याग कीजिये और जो स्थान आपको दिया जाय उसमें वास कीजिये यह सुनकर धर्मराज कहने लगे कि मैं उनके बिना कदापि नहीं रहूँगा, उस समय धर्मराज की निगाह दुर्योधन पर पहुंच गई यह देखकर धर्मराज इन्द्र से कहने लगे कि जिस स्वर्ग में पापीदुर्योधन

से मौजूद हैं उस स्वर्ग को मैं नमस्कार करता हूँ यह सुनकर इन्द्र ने अपने दूतों को आज्ञा दी कि धर्मराज को इनके भाइयों से मिलाकर शीघ्र ले आओ, वह दूत धर्मराज को नर्क में लेगए यहां उनके भाई चिल्ला रहे थे उस समय धर्मराज को देखकर कहने लगे कि महाराज हमें इस घोर संकट से निकालिये या हमारे पास ही आप निवास कीजिये अपने भ्राताओं का आर्तनाद सुनकर धर्मराज दूतों से कहने लगे कि तुम इन्द्र से जाकर कह दो कि मैं इसी स्थान पर निवास करना चाहता हूँ यह वचन धर्मराज के सुनकर दूत इन्द्र के समीप गए और इन्द्र देवताओं सहित धर्मराज के समीप आगए तब वहां से सब विघ्न हटगए और सुगन्धित पवन चलने लगी तथा इंद्रराज कहने लगे कि हे धर्मराज! आपने गुरु द्रोणाचार्य की मृत्यु के समय असत्य बोला था इसलिए यह स्थान देखना पड़ा है इसके उपरान्त धर्मराज युधिष्ठिरने अपने स्वजनों भाई पुत्र गुरु पितामहको देख और राजा हरिश्चंद्रके समान ही धर्मराज स्वर्गमें निवास करने लगे। जो इसमहाभारत कथा का नित्य पाठ करेंगे इस संसार में सुख प्राप्त होगा। इति समाप्त

सत्य प्रिंटिंग प्रेस २ शिव नगर करोल बाग देहली।